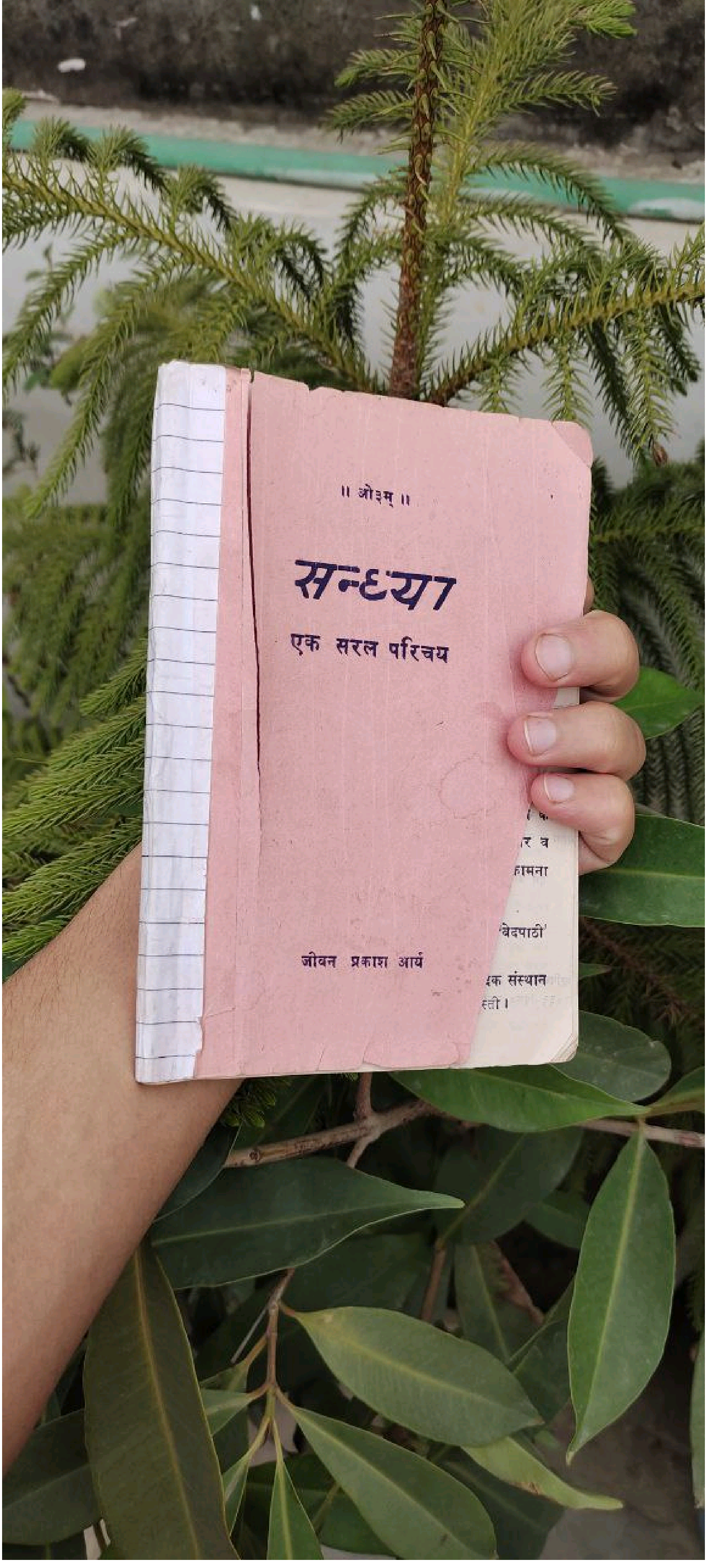

॥ ओ३म् ॥
सन्ध्या
एक सरल परिचय
जीवन प्रकाश आर्य

पुस्तक के सम्बंध में :

प्रस्तुत पुस्तक में सन्ध्या के मन्त्रों की सरल व्याख्या एकत्र की गयी है। हर बात अकाट्य प्रमाणों के आधार पर है जिसे पढ़कर प्रत्येक जिज्ञासु सरलता से ज्ञान लाभ कर सकता है।

मानव को सुख, शान्ति और आनन्द चाहिये। इस लिए उनके मार्ग को बार-बार बोध कराने की आवश्यकता है। वह मार्ग केवल वैदिक उपासना का ही है।

वैदिक उपासना में यह गुण है कि वह मानव को संसार से विमुख नहीं करना चाहता, अपितु दिनचर्या में थोड़े परिवर्तन से मानव-जीवन की दिशा को ही बदल देना चाहती है। इन विधियों को अपनाने से संसार-यात्रा में चलते-चलते अपना इहलोक और परलोक सुधारा जा सकता है।

हमें आशा है पाठक पुस्तक से यथोचित लाभ उठावेंगें।

हुबराज आर्य
प्रधान :
आर्य समाज, बस्ती।

ऋषिबोधोत्सव दिवस :
२०३९ विक० सम्बत्

विषय-प्रवेश !

सन्ध्या संस्कृत के दो शब्दों 'सम्' और 'ध्या' से बना है। सम् का अर्थ = अच्छा और ध्या का अर्थ = ध्यान है। अतः सन्ध्या से अभिप्राय उन मन्त्रों से है जिनके द्वारा परमात्मा का ध्यान भलीभांति किया जावे एवं हम हृदय की सरलता, प्रेम और आत्मा के दृढ़ विश्वास सहित उनके चरणों में बास करते हुए उनसे प्रार्थना कर सकें।

वास्तव में तो वेद का प्रत्येक मंत्र सन्ध्या में अथवा ब्रह्मयज्ञ में, जो सन्ध्या का दूसरा नाम है, आ सकता है परन्तु ऋषियों ने दिव्य-दृष्टि तथा परम सूक्ष्म-बुद्धि से उन्नीस मंत्रों को चुन कर उनको एक स्थान पर एकत्रित कर दिया है। यह मंत्र समूह और उनका क्रम इस ढंग से रक्खा गया है कि आत्मा के उच्च से उच्च भाव उनके द्वारा उत्तिष्ठ हो सकते हैं और उनकी सहायता से हम अपने परमपिता (जगतधर्ता) से मेल पैदा कर सकते हैं।

यों तो प्रत्येक क्षण जो परमात्मा के स्मरण में बीते, बड़े पुण्यों का फल है और यदि मनुष्य का एक-एक रोम जिह्वा बन जाय और उसकी आयु सहस्त्र वर्षों की हो तो भी परमात्मा के भजन रुपी ऋण को चुका नहीं सकता तथापि ब्रह्मचर्य और गृहस्थ के अन्य कर्तव्यों को आवश्यक समझ कर एवं मनुष्य की धर्मशक्ति को अनिवार्य अनुभव करके ऋषियों ने सन्ध्या के लिये दो काल निर्धारित किये हैं जिनमें सन्ध्या करना आवश्यक धर्म है। दोनों काल सन्धि के समय हैं—अर्थात् जिस काल में दिन और रात्रि का

मेल होता है वही समय परमात्मा की स्तुति, प्रार्थना और उपासना का है। यह मिलन दो कालों में होता हैं। प्रातःकाल जब नक्षत्र अस्त होने लगे उस समय से सूर्य-दर्शन तक और सायंकाल सूर्यास्त होने के समय से नक्षत्रों के उदय होने तक। इन दो कालों में सब कार्य स्थगित कर देने चाहिये, न भ्रमण, न शयन, न व्यवहार और न वार्तालाप, सबके सब बन्द रहें। यह समय केवल परमात्मा के स्मरण का समय है और इसी कार्य के लिये इस को लगाना चाहिए। इन कालों को निर्धारित करते हुए ऋषियों ने बड़ी सूक्ष्म-दृष्टि से कार्य लिया है। प्रथम तो यह काल ही ऐसे हैं कि इनमें स्वाभाविक रीति से मन शान्त होता है। प्रकृति का आश्चर्यरूप और अद्भुत दृष्य हमारे नेत्रों के समक्ष आकर स्वयं ही बहुरङ्गी परमात्मा से मिलन की अभिलाषा उत्पन्न कर देता है, द्वितीय— इस निर्धारित समय के परीक्षण हेतु धनी और दरिद्र, राजा और रङ्क सबको एक समान सरलता है। काल सूचक यन्त्रों के क्रय करने की आवश्यकता नहीं है। प्रत्येक व्यक्ति वह चाहे कितना ही निर्धन क्यों न हो यदि उसके भीतर भाव है, समय पर अपने स्वामी को स्मरण कर सकता है। समय का निर्धारण भी एक आवश्यक कर्म है। हमारे जीवन में एक समय के लिये एक आवश्यक कार्य होना चाहिये और प्रत्येक आवश्यक कार्य हेतु कोई समय निर्धारित होना चाहिये। निर्धारित समय पर जो कार्य हो वह हृदय से किया जा सकता है और उस को करने की अभिरुचि स्वतः उत्पन्न हो जाती है। जिस प्रकार भोजन का समय सदा के लिये निर्धारित करने से निश्चित समय पर क्षुधा लग जाती है एवं हृदय भी चाहता है कि भोजन करें, इसी प्रकार निर्धारित समय के होने से सन्ध्या करने के लिये भी स्वतः एषणा हमारे मन में जागृत होगी। यदि हम समय का निर्धारण न करें तो प्रमाद का भय रहेगा और हम अपने व्रत से पतित हो जावेंगे। इसलिये उपासक के लिये यह आवश्यक है कि वह समय का ध्यान रखे तथा निर्धारित समय पर सन्ध्या को करने की चेष्टा करे। जिस दिन किसी विशेष कारण से निर्धारित समय पर ईश्वर का स्मरण न कर सकें उस दिन को अपने लिये हानिकारक समझें और इस

अशिव को दूर करने हेतु दूसरे समय पर सन्ध्या वंदन करें परन्तु ऐसा कभी न हो कि दिन और रात्रि बिना ईश्वर का स्मरण किये ही व्यतीत हो जाय। इस विषय पर प्रमाद करने से बड़ा पाप होता है। भगवान मनु ने निम्न प्रकार व्यवस्था दी है :—

पूर्वां संध्यां जवंस्तिष्ठेत्सावित्रीमर्कदर्शनात् ।
पश्चिमाँतुसमासीनःसम्यगृक्ष विभावनात् ॥१०१॥
पूर्वां संध्याँ जपं स्तिष्ठन्नैशमेनो व्यपोहति ।
पश्चिमांतु समासीनो मलं हन्ति दिवाकृतम् ॥१०२॥
न तिष्ठति तू यः पूर्वां नोपास्ते यश्च पश्चिमाम् ।
स शूद्रवद्बहिष्कार्यः सर्वस्माद् द्विजकर्मणः ॥१०३॥
अपाँसमीपे नियतो नैत्यकं विधिमास्थितः ।
सावित्रीमप्यधीयीत गत्वारण्यं समाहितः ॥१०४॥

मनुस्मृति । अ० २

अर्थ—प्रातःकाल की सन्ध्या को गायत्री का जप करता हुआ सूर्य-दर्शन होने तक स्थित होकर और सायंकाल की सन्ध्या को नक्षत्र ठीक-२ होने तक बैठकर करे ॥१०१॥ प्रातः सन्ध्या के जप से रात्रि भर की और सायं सन्ध्या से दिन भर की दुर्वासना का नाश होता है ॥१०२। जो प्रातःकाल की सन्ध्या न करे और जो सायंकाल की भी न करे वह सम्पूर्ण द्विजों के कर्म से शूद्रवत बहिष्कार्य

है ॥१०३॥ जल के समीप एकाग्रचित्त से वन (वा एकान्त) में जाकर (संध्या वन्दनादि) नित्यकर्म और गायत्री का जाप भी करे ।१०४॥

सन्ध्या का स्थान निर्जन होना चाहिये। अच्छा तो यह है कि प्रातः काल ही उठ कर हम किसी नदी के किनारे चले जावें एवं आवश्यक कृत्यों से निवृत्त होकर वहां ही किसी शुद्ध स्थल पर जहाँ स्त्री-पुरुषों की ध्वनियां हम तक न पहुंचे ! सन्ध्या हेतु अपना आसन बिछा कर हम सन्ध्या के समय को ईश्वर के स्मरण में व्यय करें। पूर्व तथा पश्चिम की ओर प्रातः, सायं मुंह करके सन्ध्या करने का आदेश इसलिये है कि सूर्य की उस समय की किरणें उपासक को स्वास्थप्रद होती हैं और हृदयरोगियों के लिये अत्यन्त हितकर हैं। उन किरणों को खुले शरीर पर धारण करते तथा प्राणशक्ति-वर्द्धक निर्मल वायु के पान से हमारे शरीर में आरोग्यता तथा आत्मा में प्रसार पैदा होगा परन्तु काल के प्रभाव से लोगों के भीतर सर्दी और गर्मी के सहन की शक्ति न्यून होने से और नदियों के किनारों पर, राज्य की अथवा श्रीमानव के ध्यान के अभाव से, उपयुक्त साधन न होने के कारण नदियों के किनारों पर प्रायः वह निर्जनता नहीं होती जिसके बिना ध्यान का लगना अति कठिन है। इसलिये यदि यह साधन उपलब्ध नहीं है तो अपने गृहों में अथवा समाज के मन्दिरों में या किसी और ऐसे स्थान पर जहाँ शान्ति का वातावरण हो अपने इस नित्य-कर्तव्य का पालन करना चाहिये परन्तु ध्यान रहे कि किसी अच्छे स्थान के अभाव में यह उत्तम हैं कि सन्ध्या को बुरे स्थान में भी बैठकर कर लिया जावे अपेक्षा इसके कि इसमें नागा कर लिया जावे क्योंकि नित्य-कर्म का करना श्वास और प्रश्वास के समान है। जिस प्रकार वह बन्द नहीं हो सकते उसी प्रकार नित्य-कर्म भी त्याज्य नहीं हो सकता।

निर्जन स्थान में नियुक्त समय पर सन्ध्या करने हेतु जब हम आसीन होवेंगे तब हमें अनुभव होगा कि हम एक कठिन कार्य में प्रवृत्त हुए हैं

परन्तु जो हमारी आत्मा संस्कार (बीज) से ही जन्म लेने वाले मन के भीतर वर्तमान और विराजमान है वह इन देव शक्तियों को छिन्न-भिन्न करके उनके स्थान पर अपना बल स्थापित करने हेतु उद्यत हैं। हम प्रेम अपने भीतर देखना चाहते हैं उसके स्थान पर राग एवं द्वेष के दैत्य दर्शन देते हैं। हम शान्ति के अति इच्छुक हैं और क्रोध का भयकर-रूप हमारे समक्ष आ खड़ा होता है। हम धर्म की याचना करते हैं इसके विपरित काम और उसके विषय मोहिनी स्वरूप धारण करके हमारे मन को आकर्षित कर ले जाते हैं यहां तक कि परमात्मा पर लोग पुनर्जन्म और मोक्ष पर संशय उत्पन्न कर हृदय को घेर लेते हैं और हृदय में विचार आता है कि संध्या, प्रार्थना और उपासना के समस्त बखेड़े को लपेट कर आनन्द लाभ करें और साथ ही इतने में यह विचार आता है कि आनन्दप्रद परमात्मा को छोड़ कर आनन्द कहाँ। राग, द्वेष, काम क्रोध और विषयों की सेना के भीतर रह कर किसने सुख और शान्ति का लाभ किया है। यह राक्षस तो सुख और शान्ति के शत्रु हैं न कि उनका दान करने वाले। जिन ऋषियो, महर्षियों, और महात्माओं ने श्रेय कल्याण का मार्ग अपनाया है उन्होंने तो इन दुष्ट बृत्तियों के साथ युद्ध किया है न कि उनके साथ सन्धि की है, फिर सुख और शान्ति भी क्या तुच्छ-पदार्थ हैं उस महान कर्तव्य के सन्मुख, जो हमारा वेदकर्ता, जगत-विधाता की ओर है। वह तो हमारे पितृ हैं उन्होंने हमें जन्म दिया, वह हमारी माता हैं क्योंकि उनके प्रेम की दृष्टि दिन और रात्रि हमारी रक्षा करती है। वह तो हमारे भ्राता हैं उन्हीं के बाहुबल से हम इस संसार के संग्राम में विजय प्राप्त करते हैं, नहीं-नहीं वह हमारे सखा हैं, हमारी रक्षा, हमारी संतुष्टि और हमारे जीवन में प्रेम, आनन्द एवं स्नेह की मिठास प्रदान करते हैं। मित्र का स्वरुप धारण किये हुए सदैव ही हमारे शरीर रुपी रथ के नेता बने हुए अङ्ग-सङ्ग विद्यमान हैं। बाहर की सृष्टि की ओर जब हम दृष्टि डालते हैं तब प्रतीत होता है कि यह हमारे इष्टमित्र हैं। इस लोक ने एक मात्र पति तथा इस पृथ्वी और देवों के एक मात्र प्रकाश पुञ्ज

हैं ! उन्होंने अगणित सूर्य्य-मंडलों को उत्पन्न करके अपने-अपने स्थान पर स्थित रखा है। वह इस समस्त ब्रह्मांड के पति राजा एवं शासनकर्ता हैं। न वहाँ तक सूर्य्य की पहुंच है. न चाँद-तारों की गति है, अग्नि की तो हिम्मत ही क्या है कि वहाँ तक देख भी सके। हम निर्बल जीवात्मा ऐसे अनन्त और सर्वशक्तिमान सम्राट के राज्य में वास करते हुए सब प्रकार के आनन्द-सुख भोगते हैं। क्या हमारा यह कर्तव्य नहीं कि हम अपने राजा की महिमा का चिन्तन कर अपने स्वामी के गुणों को गावें तथा अपने माता-पिता से मिलने की चिन्ता करें (चेष्टा करें)। धिक्कार है हमारे जीवन पर यदि हम परमात्मा के चरणों में बैठने का यत्न न करें। हमारे जैसा कौन ऐसा कृतघ्न होगा यदि हम उसको भूल जावें। श्वास-प्रश्वास में हमें स्मरण रखना है इस विचार से बलवान होकर आत्मा का आलस्य दूर हो जाता है, मन की निर्बलता भाग जाती है, राक्षस और दैत्य भी कुछ समय के लिये दूर हो जाते हैं। हृदय में शान्ति और उत्साह विराजमान होते हैं। अब प्राणायाम करो और भी चित्त निर्मल होगा। इस प्राप्त योनि को स्वच्छ रखने हेतु बार-बार प्रयत्न करो, यही अभ्यास है। इस चित्त की स्वच्छता और परमात्मा के योग के मुकाबिले में विषय के सुखों को तुच्छ समझो, यही वैराग्य है। इन दोनों साधनों से अपने भीतर और बल ग्रहण करो तथा प्रभु-परमात्मा की अनन्य भक्ति के योग्य बनों। इस प्रकार चित्त को एकाग्र और निर्मल करना परमात्मा के पूजन की विधि है। वह जगत के धन-सम्पत्ति आदि के इच्छुक नहीं हैं। दुनियाँ के बाहरी आडम्बर उनको प्रसन्न नही कर सकते। उनकी सच्ची प्रसन्नता तो इस पर है जो अपने हृदय को एक छोटे बालक के समान शुद्ध और निर्मल बनाकर केवल उन्हीं पर भरोसा करता हुआ उनके चरणों में विराजमान होता है। इसलिये समस्त आडम्बरों को त्याग दो और केवल चित्त की सरलता और प्रसाद के पुष्प को लेकर इस प्रभु-पूजा में प्रवृत हो, जो कुछ हृदय में हो वह निर्भय होकर कहो और फिर सब कुछ उनकी इच्छा पर छोड़ दो वह अवश्य हमारी सुनेंगे और अपनी दिव्य-ज्योति से हमको पथ-प्रदर्शित

करेंगे।

सन्ध्या [illegible] एक शस्त्र है और बड़ा बलवान-शस्त्र है। जैसे सूर्य्य की किरणों से रात्रि की सेनाएं स्वय ही छिन्न-भिन्न हो जातीं हैं उसी प्रकार पाप के दल इस शस्त्र के सम्मुख नष्ट-भ्रष्ट हो जाते हैं। इन मन्त्रों की अद्भुत-शक्ति है। इसके अर्थों पर विचार करने से जीवन के आदर्श उच्च हो जाते है, आत्मा की शक्तियाँ महान बन जाती हैं, पाप की रुचि कम हो जाती हैं, ईश्वर में प्रेम बढ़ता है तथा सच्चा पथ-प्रदर्शन जीवन में होता है। सन्ध्या को सफल करने के लिये इन सब वस्तुओं की आवश्यकता होती है परन्तु यह सब वस्तुए भी सन्ध्या से उत्पन्न होती हैं। इन पदार्थों से बढ़कर जीवात्मा परमात्मा के दर्शन करके अमृत बनता है और पाप के बन्धनों को तोड़ कर मोक्ष-धाम को प्राप्त होता हैं।

'शतपथ बाह्मण' में लिखा है कि "इस समस्त पृथ्वी को धन से भर कर दान देने से जो फल प्राप्त होता है उससे भी तिगुना या उससे बढ़कर फल उसको प्राप्त होता है जो ठीक-ठीक जानता हुआ प्रतिदिन स्वाध्याय करता है।" इसलिये स्वाध्याय करना चाहिये। दूसरे स्थान पर भी वही ऋषि कहता है "इस पृथ्वी और द्यौः में जितने परिश्रम के कार्य हैं उनकी पराकाष्ठा स्वाध्याय है उस व्यक्ति के लिये जो समझकर स्वाध्याय करता है।" इसलिये – स्वाध्याय भलीभाँति करना चाहिये।

मेरे प्रिय बन्धुओं ! इस परम-शस्त्र को धारण करो। अपने आत्मा के शत्रुओं से युद्ध करके अपनी आत्मा के भीतर सुख और शान्ति का राज्य स्थापित करो। इस परम औषधि की कृपा से आपके मल दूर होंगे और आपका चित्त निर्मल होगा। चित्त के प्रभाव से आप परमात्मा के दर्शन करने के योग्य बनोगे और आपको धर्म, अर्थ, काम तथा मोक्ष की सिद्धि प्राप्त होगी।

जीवन प्रकाश आर्य
गाँधी नगर, बस्ती।
१-१-८१

आचमन मंत्र

ओ३म् शं नो देवीरभिष्टय ऽआपो भवन्तु पीतये ।
शंय्योरभि स्रवन्तु नः ॥

अर्थ- -ओ३म्-हे परमेश्वर ! आप [शन्नो (शम् + नः)] कल्याण करने वाले हो। आपके अनुग्रह से हमारे लिये [देवी : दिव्य गुणों से युक्त तथा [अभिष्टये] मनोवांछित सुखों को प्राप्त कराने हारा [आपः] यह जल [भवन्तु पीतये] पीने से हमारे लिये कल्याणकारी होवे । हम इसका पान करते हैं [शंयो (शम् + यः) यह जल शान्तिदायक हो कर [अभि] सब ओर से [स्रवन्तु नः] हमारे ऊपर आनन्द की बर्षा करे। (जिससे हमारा जीवन आनन्दमय बन जावे) ।

निर्जन स्थान और शुद्ध आसन पर बैठकर जब हम ऋषियों की पद्धति के अनुसार परमात्मा का पूजन प्रारम्भ करते हैं तो सर्वप्रथम जिस मंत्र का पाठ करते हैं वह यह है और इस मंत्र के पदार्थ के साथ हम तीन बार आचमन करते हैं।

[आचमन की विधि]:—हाथ की हथेली पर कुछ जल गिरा कर ओठों के द्वारा इस प्रकार पीया जाय कि वह कण्ठ से अधिक नीचे न उतरे।

आचमन के कई प्रयोजन है। प्रथम—यह है कि आचमन पावक है। इसके द्वारा हम सांसारिक और पारमार्थिक में भेद करते हैं। सांसारिक कार्यों में फंसे हुए जब परमार्थ के कार्यों को करने लगते है तो उन दोनों अवस्थाओं को अलग करने के लिये आचमनके द्वारा ऐसी रेखा खींची जाती है ताकि उपासक यह समझे कि मैं अब सांसारिक द्वन्दों और कलह से निकल कर शान्तिधाम की सीमा में प्रवेश करने लगा हूं। इस उद्देश्य से प्रत्येक यज्ञ और पवित्र कर्म के प्रारम्भ में आचमन की आज्ञा दी गई है।

द्वितीय—यह कि आचमन के द्वारा कण्ठस्थ कफ की निवृत्ति होती है, गला साफ हो जाता है एवं प्राणायाम की क्रियाओं का करना सुगम हो जाता है और सन्ध्या करने में इन दोनों दोषों के द्वारा बिघ्न नहीं होती है।

ततीय—यह कि इस धर्मक्रिया को करते हुए आचमन हमारे स्वास्थ की भी उन्नति करता है। इसलिये भगवान मनु ने भोजन के आरम्भ और अन्त में इसकी आज्ञा दी है।

जो जल हमारे भीतर जाता है वह हमारी पाचनशक्ति को बढ़ा कर दीर्घायु प्रदान करता है और जैसा ऋषियों के निर्धारित नियमों का यह फल है इससे लौकिक और पारलौकिक दोनों प्रयोजन सिद्ध होते हैं। इससे आचमन हमको स्वस्थ और दीर्घायु प्रदान करता हुआ हमारा मन प्रभु के चरणों में ले जाने के लिये प्रस्तुत करता है। इन कारणों से आचमन

करना आवश्यक है। जैसा तत्वदर्शी श्री स्वामी दयानन्द जी ने लिखा है:-यदि जल न हो तो आचमन न करे परन्तु संध्या से प्रमाद न करें क्यों कि संध्या मुख्य है और आचमन आदि क्रिएंया गौण हैं । सन्ध्या में सहायता देने हेतु निर्धारित की गई हैं । यदि मुख्य-कर्म को छोड़ दिया जाय इसलिये कि गौण कर्म के साधन उपलब्ध नहीं थे तो यह मूर्खता है । इस आचमन में हम परमात्मा से प्रार्थना करते हैं कि हे भगवन ! आप विद्या स्वरुप हैं, सर्वव्यापक हैं, आप हमारे हेतु कल्याण और पूर्ति के लिये शान्ति देने वाले हैं । आप शान्ति की बृष्टि हम पर सब ओर से करें । इस मंत्र का यह अर्थ हो सकता है कि हे प्रभु ! आपकी कृपा से यह दिव्य जल जिससे हम आचमन करते हैं हमारे कल्याण और पूर्ति के लिये हमको शान्ति देने वाला हैं आप शान्ति की बृष्टि हम पर सब ओर से करें । परमात्मन् ! आप विद्या स्वरुप हैं, स्वयं प्रकाशमान हैं एवं सूर्य चन्द्र, तारागण आदि अन्य दिव्य पदार्थों को प्रकाश देते हैं । यह सब अपना प्रकाश नहीं रखते, प्रत्युत आपके दिये प्रकाश से प्रकाशमान हैं । जहाँ प्रकाश है वहाँ अन्धकार और पाप नहीं । चूँकि वह सर्वव्यापक है इसलिये ऐसा कोई स्थान नहीं जहाँ परमात्मा की ज्योति विद्यमान न हो । जाज्वल्यमान पुण्य-स्वरुप तेज संसार के हर एक, गुप्त से गुप्त, स्थान में विराजमान है परन्तु वह पिता केवल तेजस्वी ही नहीं है, वह जल के समान शीतल और शान्ति का पुञ्ज है । उसके आदेश से

मात्र से समुद्र की सन्नाटे मारती हुई लहरें और कुपितु वायु के भयानक रुप एक क्षण में शान्त एवं सम हो जाते हैं । इस ज्योतिमय और मधुरमुख शान्त पिता के चरणों में हम इस उद्देश्य से जाते हैं कि इस यज्ञ में किसी प्रकार के विघ्न आकर हमको न सताएं । हम परमात्मा का पूजन तब तक नहीं कर सकते जब तक हमारा मन शान्त न हो । इस शान्ति में विघ्न डालने वाले बहुत से क्षोभ हमारे अन्दर विद्यमान हैं । जब हम यज्ञ में पहुंचते हैं राग, द्वेष, काम, क्रोधादि सब शत्रु हमारे यज्ञ को विध्वंस करने को उद्यत हो जाते हैं । जितने बुरे विचार हैं वह वेग के साथ हमारे मन के समक्ष उपस्थित हो जाते हैं ताकि परमात्म-विचारों से हटकर हम संसार चक्र में फंस जाएं । इन राक्षसों को दूर करना अति कठिन कार्य है । पारमात्मा ! आप से हमारी यह प्रार्थना है कि आप हमारे सहायक बने । आपकी कृपा से इस यज्ञ में हमारा यह मन ऐसा एकाग्र हो और हमारे चित्त पर शान्ति और धर्म की ऐसी वर्षा हो कि हम बिना विघ्न के आपके चरणों में बैठकर सुख रूप बोध कर सकें । जहाँ आप हैं, वहाँ पाप और अन्धकार नहीं । हमको भी अपने पुण्य और शान्ति में से कुछ प्रदान करें ।

आचमन के पश्चात इन्द्रिय स्पर्श मंत्र आते हैं वह यह हैं:—

इन्द्रिय स्पर्श मंत्र

ओं वाक् वाक् । ओं प्राणः प्राणः । ओं चक्षुः चक्षुः । ओं श्रोत्रम् श्रोत्रम् । ओं नाभिः । ओं हृदयम् । ओं कण्ठः । ओं शिरः । ओं बाहुभ्यां यशोबलम् । ओं करतलकर पृष्ठे ॥

[अर्थ—हे परमात्मन् ! हमारी वाणी और रसना शुद्ध बने । हे प्रभी ! हमारी नासिका तथा प्राण-शक्ति बलवान बने । हे जगदीश्वर हमारी देखने की शक्ति व नेत्र स्वस्थ रहें । भगवान् हमारी श्रवण शक्ति तथा कान स्वस्थ रहें । परमात्मन् ! हमारी नाभिचक्र स्वस्थ रहें । हे जगदीश्वर ! हमारा हृदय और मन शुद्ध सबल बने । हे परमेश्वर ! हमारा कण्ठ प्रदेश शुद्ध रहे । हे स्वामिन् ! हमारा मस्तिष्क हमारी बुद्धि शुद्ध रहे । भगवन् ! हमारी दोनों बाहें यश और बल को धारण करें । प्रभो ! हमारे हाथों की हथेलिया तथा उनके पीछे के भाग पूर्ण स्वस्थ रहें ।]

(नोट—ऊपर लिखे वाक्य बोलते तथा अर्थों का विचार करते हुए दृढ़ संकल्पात्मक मन से दाहिने हाथ की अंगुलियों से इन्द्रियों का स्पर्श करे ।)

इन मंत्रों में भिन्न-२ इन्द्रियों का नाम लेकर और परमात्मा के सबसे पवित्र नाम 'ओ३म्' को उनके पहिले लिख

कर उनसे प्रार्थना की गई है कि वह बलदाता शक्ति-स्वरुप, जो मनुष्य की इन्द्रिय-इन्द्रिय में रमण कर रहे हैं और वहाँ स्थित होकर उनको जीवन और कार्य-शक्ति प्रदान करते हैं। वह प्रत्येक इन्द्रिय को बल देकर साधक को कृतार्थ करे, क्योंकि जब तक उसके शरीर में आरोग्यता नहीं होगी और उसकी इन्द्रियों में बल नहीं होगा तब तक वह परमात्मा की प्राप्ति के सधानों पर भली प्रकार दृढ़ नहीं हो सकता ।

हमारी जितनी मानसिक और परमार्थिक क्रियाएं हैं। वह समस्त स्वस्थ शरीर के आधीन हैं। रुग्णावस्था में न स्नान, न संध्या, न ध्यान ओर न समाधि सम्भव हो सकते हैं। इसलिये महर्षि पातञ्जलि ने अपने योग-सुत्रों में व्याधि को योग की ग्यारह अवरोधों में से प्रथम वर्णन किया है। यहाँ पर यह प्रश्न उत्पन्न हो सकता है कि परमात्मा की प्रार्थना करने से हमारे शरीर के अङ्ग किस प्रकार पुष्ट हो सकते हैं। इसका उत्तर यह है कि सच्चे हृदय से जो प्रार्थना उपासक अपने उपास्य से करता है वह अवश्यमेव सफल होती है, यदि उसमें किसी दूसरे के साथ राग एवं द्वेष न हो और वह पूर्ण प्रीति के साथ की जावे। यदि हम परमात्मा से प्रार्थना करें और स्वयं कुछ भी पुरुषार्थ न करें तो हमारी प्रार्थना एक हृदय से नहीं परन्तु एक कपटी आत्मा से उत्पन्न होती है और वह सर्वथा स्वीकार करने के योग्य नहीं । हृदय की सच्चाई और लगातार बलवान इच्छाशक्ति भी इस संसार की

महान शक्तियों में से है और जब वह शक्ति एक विश्वासी भक्त के हृदय से उत्पन्न होकर बाह्य प्रकृति से संसार में विचरण करती है तो अपनी प्रकृति के पदार्थों में उसी प्रकार परिवर्तन उत्पन्न कर सकती है जिस प्रकार विद्युत की शक्ति आजकल के वैज्ञानिकों को अपनी अपूर्वता दिखला रही है। मूर्ख मनुष्य विद्युत-शक्ति को देख नहीं सकता परन्तु जब उस के अपूर्व कर्मों को देखता है तो चकित रह जाता है । ऐसे ही एक पवित्र आत्मा से उत्पन्न और दृढ़तापूर्ण इच्छा वह परिवर्तन कर सकता है जिनका साधारण मनुष्यों को आभास तक नहीं । इन्द्रिय स्पर्श मंत्रों के द्वारा हम इस सूक्ष्म-शक्ति को अपने शरीर की पुष्टि के लिये प्रयोग में लाते हैं और बलवान होकर परमात्मा के प्रयोजनों को इस संसार में पूर्ण करते हैं। इसके साथ यह भी स्मरण रखना चाहिये कि यदि परमपिता परमेश्वर के समक्ष किसी ऐसी प्रार्थना को लेकर उपस्थित होते हैं जिसकी सिद्धि के हेतु हम अपनी ओर से किञ्चित मात्र भी प्रयत्न नहीं करते तो हम परमात्मा को धोखा देने की चेष्टा करते हैं और पाप के भागी बनते हैं। इसलिये इस भय से कि हमने प्रातःकाल और सायंकाल परमात्मा के समक्ष शीश झुकाकर अपने अङ्गों की पुष्टि के लिये प्रार्थना करनी है और यदि हमने शरीर के स्वास्थ और पुष्टि के नियमों पर आचरण न किया तो वह हमको धूर्त पुरुष समझेंगे। एक सच्चे साधक के लिये आवश्यक है कि वह आयुर्वेद की आज्ञा के अनुसार अपने शारीरिक जीवन को

व्यतीत करे, वह दिनचर्या और रात्रिचर्या के नियमों पर भलीभाँति आचरण करे और अपने स्वास्थ्य को सदा ऐसे रखे कि उपासना व समाधि के शत्रु, व्याधि, निकट पहुंच न पावें और वह विघ्नों के दूरगामी व्याधि व विघ्न को सदा ही अपने से दूर रख सकें!

इस शरीर के भिन्न-भिन्न अङ्गों के नाम लेते हुए हमको यह चिन्तन करना है कि सर्वव्यापक "ओ३म्" इन अङ्गों के अधिष्ठाता बन कर इनको प्रचालित कर रहे हैं क्योंकि जब तक आत्मा के भीतर यह विश्वास उत्पन्न नहीं होता तब तक हमारे शरीर के यह अङ्ग हमें मुक्ति-पथ पर ले जाने में असमर्थ होते हैं।

इन्द्रिय स्पर्श मंत्रों के पश्चात् मार्जन मंत्र आते हैं। वह यह हैं :—

मार्जन मंत्र

ओं भुः पुनातु शिरसि । ओं भुवः पुनातु नेत्रयोः । ओं स्वः पुनातु कण्ठे । ओं महः पुनातु हृदये । ओं जनः पुनातु नाभ्याम् । ओं तपः पुनातु पादयोः । ओं सत्यं पुनातु पुनः शिरसि । ओं खं ब्रह्म पुनातु सर्वत्र ॥

अर्थ—हे प्राण स्वरुप परमेश्वर ! आप हमारे सिर (बुद्धि) को पवित्र कीजिये । हे दुःख विनाशक स्वामिन् ! आप हमारे नेत्रों को, दृष्टि को पवित्र कीजिये । हे सुख स्वरुप सर्वव्यापक परमेश्वर ! आप हमारे कण्ठ को, वाणी को पवित्र कीजिये । हे पूजनीय महान् परमात्मन् ! आप हमारे हृदय को पवित्र कीजिये । हे संसार के उत्पत्तिकर्ता देव ! आप हमारी नाभि को पवित्र कीजिये जो कि शरीर की नस-नाड़ियों का केन्द्र स्थान है । हे दण्डदाता ज्ञान स्वरुप भगवन् ! आप हमारे पैरों को पवित्रता प्रदान कीजिये । हे सत्य स्वरुप नित्य अविनाशी प्रभो ! आप हमारे मस्तिष्क (हमारी) बुद्धि को पुनः पवित्र बनाइये । हे अनन्त एवं महान सर्व व्यापक परमेश्वर ! आप हमारे समस्त शरीर को शुद्ध पवित्र बनाइये ।

विधि—बाएं हाथ की हथेली में जल लेकर दायें हाथ की बीच की

अंगुलियों से उसे स्पर्श करते हुए उपरोक्त मंत्र से दृढ़ संकल्पात्मक मन से विभिन्न अङ्गों का प्रार्थना पूर्वक स्पर्श करें।

यह स्वीकार किया कि हमारा शरीर पुष्ट है और हमारी इन्द्रियाँ बलवान हैं। पर इनसे क्या लाभ है ? यदि हमारा शरीर और हमारी इन्द्रियां धर्म के पथ पर चलने वाली न हों प्रत्युत उनसे अधिक हानि की सम्भावना है । क्योंकि जिस मनुष्य की शक्तियाँ अधिक हैं वह पाप भी अधिक कर सकता है तुलना में उस व्यक्ति के अनुपात में जो कि निर्बल और न्यून शक्तियों वाला हो । शक्ति एक तलवार के समान है जो मित्र और शत्रु दोनों को काट सकती है । जब तक इसका उचित प्रयोग न किया जावे कोई शक्ति शुभ प्रदान नहीं कर सकती । इसलिये बल के लिये प्रार्थना करने के पश्चात मार्जन मंत्रों के द्वारा परमात्मा से प्रार्थना करें ।

इन मंत्रों का नाम मार्जन मंत्र इसलिये है कि इनके द्वारा मनुष्य की शक्तियां निर्मल और पवित्र की जाती हैं । मार्जन का अर्थ "मलना और स्वच्छ करना" है । जिस प्रकार पात्र को मल कर उसका मैल दूर करके उसे शुद्ध और पवित्र कर लेते हैं । इसी प्रकार इन मंत्रों के द्वारा इन्द्रियों के दोष दूर करके इनको पुण्य से और निर्मल बना लेते हैं । दिन को अथवा रात्रि को जो पाप हम करते हैं उससे हमारे चित्त पर मलिन संस्कार पड़ जाते हैं । कुछ काल तक तो वह मलिनता प्रतीत नहीं होती

परन्तु कुछ काल उपरांत चित्त पाप से काला हो जाता है और उसकी पवित्रता एवं निर्मलता नष्ट हो जाती है । जैसे दर्पण पर धूल पड़ने से कुछ काल तक तो उसकी चमक बनी रहती है परन्तु चिरकाल के पीछे वह धूल से इतना धूमिल हो जाता है कि उसमें अपने मुख को नहीं देख सकते, दर्पण में मुख दर्शन के लिये आवश्यक है कि उसके धूल को प्रतिदिन स्वच्छ किया जावे । इसी प्रकार चित्त के दर्पण पर से पाप के मल को प्रतिदिन स्वच्छ करके उसको शुद्ध और पवित्र रखना चाहिये । ऐसा तभी सम्भव है जब प्रतिदिन प्रातः एवं सायंकाल हम प्रत्येक इन्द्रिय के पुण्य और पाप को विचार कर परमात्मा से प्रार्थना करें कि वह हमारे पापों को दूर करे ।

पाप की शक्ति इतनी महान है कि परमात्मा की सहायता के बिना उससे बचना अति कठिन है । इसलिये साधक अपने शिर को कुशा से छूकर अथवा उसको ध्यान में रख कर परमात्मा से प्रार्थना करता है कि हे प्रभु ! आप प्राणों के प्राण हैं, जीवनदाता हैं, पाप को दग्ध करने की शक्ति प्रदान करने वाले हैं । आप की कृपा से मेरे शिर में उत्पन्न पवित्र विचार और शुभ संकल्प वाले हों । मानव विचारों की मूर्ति है । जिस प्रकार के उसके विचार होते हैं उस प्रकार का वह बन जाता है । इसलिये परमात्मा से प्रार्थना करता है कि कोई दुर्जनता उसके मस्तिष्क में उत्पन्न न हो । बुरे विचार हमारी सन्तान हैं और जैसे बुरी संतान अपने पिता के लिये दुःख का कारण बनती है वैसे ही दुष्ट

विचार भी हमारे लिये दुःख का साधन उत्पन्न करेंगे । इसलिये प्राणरुप परमात्मा से यही प्रार्थना है कि हमारे संकल्प शिव और शुभ हों । दुःखों को नष्ट करने वाले परमात्मन् ! आप हमारे नेत्रों को पवित्र करें । इन नेत्रों के द्वारा हम सदा वेदों का पाठ करें, समस्त शास्त्रों को पढ़ें । यह नेत्र कभी धर्म विरुद्ध एवं पापजनक पुस्तकों के पाठ अथवा पराई स्त्रियों के दर्शन में न लगें । इनके द्वारा हम किसी पर क्रोध-दृष्टि न करें । सदा प्रेम का भाव इनसे प्रकाशित हो । इनकी सहायता से हम नेत्रहीनों और पथिकों को सीधे मार्ग पर डालें । हे परमात्मा ! आपकी कृपा से हमारे कानों में सदा मधुर और पवित्र शब्द पड़ते रहें । गन्दे गीत और दुष्ट बचन कभी भी कर्णगोचर होकर कभी भी हमारे आत्मा के संस्कारों को नष्ट न करें । हे दयामय-जगदीश ! आप सबसे महान हैं, न कोई आपके तुल्य है और न कोई आपसे अधिक है । आप मुझ पापी के हृदय को भी महान बनावें । तुच्छता और नीचता के अंकुर इस हृदयभूमि में कभी उत्पन्न न होवें । सुख हो अथवा दुःख हो, धनाढ्य हों अथवा निर्धन हों, मित्रों से घिरे हुए हों अथवा अकेले हों, हमारा हृदय सर्वदा विशाल रहे । आप सदा हमारे हृदय सिंहासन पर आसीन रहें । हे सर्व जगत्तुपादक-प्रभो ! हम अपनी नाभि से, अपने पाँव से कोई पाप कर्म न करें । हमारे शरीर का प्रत्येक अङ्ग पुण्य और धर्म का वर्धक हो । उसके द्वारा कभी भी पाप को सहारा न मिले । इस प्रकार

मानव, परमात्मा से प्रार्थना करता हुआ अपने पापों पर विचार करे और उन पर पश्चाताप प्रगट करता हुआ अपने हृदय में दृढ़ निश्चय करे कि मैं इन पापों को दुबारा कदापि न करुंगा। इसी का नाम आत्म-समीक्षा है तथा इन मंत्रों में आत्म-समीक्षा का उपदेश है।

आत्म-समीक्षा से ही ऋषि, मुनि और तपस्वी परमात्मा के चरणों में प्राप्त हुए हैं।

कई विद्वानों का विचार है कि "इन्द्रियां पाप का मूल है" और उनको नष्ट कर देना ही हमारे धार्मिक उन्नति का उपाय है।" इस विचार में इतना सत्य तो है कि पाप के भीतर प्रवृत्त हुई इन्द्रियों की अपेक्षा उनका नष्ट कर देना अच्छा है। यह अच्छा है कि हम विचार से शून्य हों अपेक्षा इसके कि हम अपने विचार से दूसरों को हानि पहुंचाएं। निर्दोषों को दलन करने वाले हाथ की अपेक्षा हाथ के बिना ही रहना श्रेष्ठ है। अच्छा है कि हमारी दर्शन शक्ति और श्रवण शक्ति नष्ट हो जावे अपेक्षा इसके कि हम अपनी मैली आँखों से पर-स्त्री को देखें और कानों से असत् वचनों का श्रवण करें।

परन्तु वैदिक धर्म का उपदेश है कि हमको अपनी इन्द्रियां केवल पाप से दूर ही नहीं रखनी चाहिये बल्कि सदा उनको पुण्य में लगाना चाहिये। परमात्मा ने यह अपूर्व शक्तियाँ

हमको केवल इस लिये नहीं प्रदान की हैं कि हम इनसे कोई बात न करें बल्कि इसलिये प्रदान की है कि इनसे पुण्य का उपार्जन हो। बुरे मार्ग से बचना ही धर्म नहीं है बल्कि अच्छे मार्ग पर चलना धर्म का उत्कृष्ट भाव है। इसी कारण इन मार्जन मंत्रों में साधक परमात्मा से पाप की निवृत्ति, धर्म के उपार्जन के लिये प्रार्थना करता है।

प्राणायाम मंत्र

ओं भूः। ओं भुवः। ओं स्वः। ओं महः।
ओं जनः। ओं तपः। ओं सत्यम्॥

[तैत्तिरीयारण्यक-
-प्र० १० अनु०-२७]

ओ३म्

ओं अग्ने नय सुपथा राये अस्मान विश्वानि देव वयुनानि विद्वान युयोध्यस्म जुहुराण मेनो-भूयिष्ठान्ते नमः उक्ति विधेम ॥

मेरे प्यारे भाइयों !

आपके समक्ष मैं संध्या के तीन मंत्रों की अर्थात् आचमन, इन्द्रिय-स्पर्श तथा मार्जन मंत्र की व्याख्या कर चुका हूं। चतुर्थ मंत्र 'प्राणायाम' है।

यदि आज से तीस या चालीस वर्ष पूर्व कोई व्यक्ति प्राणायाम की चर्चा करता और यह कहता कि—प्राणायाम लाभकारी है, इसको करना चाहिये तो सम्भवतः ही कोई व्यक्ति और वह भी ऐसा जो शास्त्रों का अध्ययन करने वाला हो, उसको श्रवण करता परन्तु आजकल के सभी साक्षर यहां तक कि विदेशी भी प्राणायाम के गौरव को स्वीकार करते जाते हैं। अभी कुछ वर्षों पहले प्रोफेसर राममूर्ति जी ने अपने भाषणों में वर्णन किया था कि शारीरिक दृष्टि से उनकी बृद्धि प्राणायाम से ही हुई। इससे शरीर में बल और बुद्धि उत्पन्न होते हैं।

प्राणायाम हमारे लिये अत्यन्त आवश्यक है। इसका एक प्रमाण यह है कि हमारे जो फेफड़े हैं, जिनसे हम रक्त लेते हैं उनमें बहुत सी नसें हैं जिनके भीतर रक्त प्रवाहित होता है। जिस क्षण हम श्वास भीतर खींचते हैं तो हमारे भीतर वायु प्रवेश करती है। वायु 'आक्सीजन' तथा 'नाइट्रोजन' की बनी हुई है। आक्सीजन जब किसी पदार्थ के साथ मिलती है तो यह उसको जला देती है। हमारे शरीर में जिस कदर मल है जब वह हमारे फेफड़े की सतह तक पहुंचते हैं तो वहां एकत्र हो जाते हैं। जब हम श्वास लेते हैं तो शुद्ध वायु जो भीतर जाती है इन मलों को छिन्न-भिन्न कर देती है और एक अन्य गैस "कार्बनिक एसिड गैस" के रुप में परिवर्तित होकर बाहर निकल जाते हैं। यह गैस इस प्रकार गन्दी और दूषित है कि यदि व्यक्ति इसके भीतर रहे तो अपनी ही उत्पन्न की हुई दूषित वायु से दम घुट कर मृत्यु को प्राप्त होगा। यदि एक स्वस्थ मूषक को किसी शीशे के पात्र में बन्द कर दिया जावे तो कुछ काल उपरान्त दूषित वायु के प्रभाव से उसका दम घुटने लग जावेगा और वह छटपटा कर मृत्यु को प्राप्त हो जावेगा।

आक्सीजन का यह कर्तव्य है कि यह उस मल को जो हमारे फेफड़ों की सतह पर आ जाती है, दग्ध कर देता है। इसके अधिक मात्रा में भीतर लेने के लिये लोगों ने अनेक

प्रकार के व्यायाम निर्धारित किये हैं । व्यायाम का यही कर्तव्य है कि प्राणवायु हमारे फेफड़ों तक जावे और उन मलों को नष्ट कर दे । कई व्यक्ति केवल श्वास का व्यायाम ही, जिनको (Breathing Exercise) कहते हैं, उनका प्रयोजन भी यही है कि इसकी सहायता से सब मलों को नष्ट कर दिया जावे और फेफड़े के प्रत्येक कोने की सतह तक वायु पहुंचे । व्यायाम करते समय कुछ लोग मुख के द्वारा श्वास लेते हैं । वह भयंकर भूल करते हैं क्योंकि वह इस प्रकार अपने भीतर कई रोग उत्पन्न कर लेते हैं । मुख के द्वारा श्वास लेने से गहरा श्वास (Deep Breathing) नहीं होता । अतः हमारे फेफड़ों के कुछ भाग तो स्वच्छ हो जाते हैं परन्तु प्रायः सभी शुद्ध नहीं होते । वायु उन तक जाती ही नहीं । आप समझें कि जिस तरह हमारे भवन के भीतर कोई नाली है जो गन्दी रहने के कारण प्रायः रोगों का कारण होती है । इसी तरह हमारे शरीर के भीतर फेफड़े हैं जो दूषित रहने के फलस्वरुप प्रायः रोगों का कारण होते हैं । शरीर के भीतर जब कोई मल एकत्र हो जाता है तो वह रोगी कर देता है ।

इस वायु में, जो हमारे चतुर्दिक है, कई प्रकार के राक्षस रहते हैं । संस्कृत में राक्षस को निशाचर भी लिखा है । निशाचर उसको कहते हैं जो अन्धकार में निवास करे । हमारे चतुर्दिक की वायु में कई एक निशाचर भ्रमण करते रहते हैं ।

सूर्य्य की किरणें इन राक्षसों को नष्ट कर देती हैं परन्तु जिस स्थान पर धूल-मल (गर्द-गुबार) अधिक हो और प्रकाश कम रहे वहाँ यह निशाचर अधिक रहते हैं । जैसे शहर के दरवाजों, गन्दी सड़कों, अन्धेरे और बन्द भवनों में ऐसे कीटाणु अधिक पाये जाते हैं । मेरे विचार में संस्कृत में निशाचरों से इन्हीं कीटाणुओं से आशय है ।

एक व्यक्ति यक्ष्मा का रोगी है । वह थूकता है । हम इस बात को नहीं समझते कि उसका गृह-स्थान में थूकना अति हानिकारक है । वह दीवार पर थूकता है, फर्श पर थूकता है, वह सहन पर थूकता है, अभिप्राय यह कि वह जहां पाता है थूक देता हैं । उसकी थूक में ऐसे कीटाणु हैं जो वहाँ से निकल कर वायु में भ्रमण करने लग जाते हैं । आपने चिकित्सालयों में या अन्य राजकीय भवनों पर लिखा हुआ देखा होगा कि "यहाँ पर थूकना सख्त मना है" परन्तु फिर भी हम दीवारों पर थूकने से नहीं बचते ।

थूक के निशाचर वायु में घूमने लगते हैं और वह श्वास के द्वारा हमारे भीतर प्रवेश कर हमें रोगी कर देते हैं । जिस परिवार में एक बार यक्ष्मा अधिकार कर ले वह वहां पर सदैव के लिये निवास कर लेता है । एक पंडित जी का कथन था कि उन के परिवार में यक्ष्मा की बीमारी से ही तीन व्यक्ति एक के पश्चात् दूसरा क्रमशः मृत्यु को प्राप्त हो गये । जब तङ्ग आकर

उन्होंने एक वैद्य को बुलाया तो वैद्य जी ने चिकित्सा का यह ढङ्ग किया—आदेश दिया कि सारे गृह स्थान के फर्श को ऊपलों की अग्नि से शुद्ध किया जावे। अतः समस्त फर्श पर और दो-दो फीट दीवारों पर भी अधिक से अधिक ऊपलों की अग्नि की गई जिससे व्यक्ति की थूक आदि जिस कदर मल फर्श पर और दीवारों पर एकत्र थे दग्ध हो गये। तद्पश्चात यक्ष्मा का कोई प्रभाव फिर उनके घर नहीं हुआ। ठीक ऐसे ही फेफड़ों की दशा है। जब कीटाणुं इसमें प्रवेश करते हैं तो उसमें निवास कर अपनी बस्तियां बसा लेते हैं और कई रोगों को उत्पन्न कर देते हैं।

प्राणायाम के द्वारा प्रथम हम दूषित वायु को बलपूर्वक शरीर से बाहर निकालते हैं पश्चात् शुद्ध वायु धीरे-धीरे भीतर ले जाते हैं। शास्त्रों में वर्णन है कि संध्या ऐसे स्थान पर करना चाहिये जहाँ वायु शुद्ध हो, जल प्रवाहित हो रहा हो तथा स्थान पवित्र हो। मेरा यह विश्वास है कि जो व्यक्ति प्राणायाम की विधि करता है वह कभी भी यक्ष्मा का रोगी नहीं होता, यदि कभी कोई कीटाणुं उसके शरीर के भीतर प्रवेश भी कर जावे तो वह कीटाणुं शीघ्र ही नष्ट हो जाता है।

मनु का श्लोकः-दह्यन्ते ध्मायमानानं धातुनां हि यथा मलाः
तथेद्रियाणा दह्यन्ते दोषाः प्राणस्य निग्रहात

अर्थ—जैसे अग्नि में धौंकने से सुवर्णादि धातुएं शुद्ध हो जाती हैं वैसे ही प्राणायाम से मनुष्य के इन्द्रियों के दोष जल जाते हैं और वह निर्मल हो जाते हैं।

मनु० अ०-६ / ७१ ॥

एक बात जो मैं विशेष रुप से कहना चाहता हूं वह यह है कि कभी-२ लोग अनजाने में बल से प्राणायाम प्रारम्भ कर देते हैं, इससे उनकी रक्त की नाड़ी के फटने का भय है जिससे व्यक्ति पागल भी हो जाता है। प्राणायाम को हर स्थान पर तब तक कदापि नहीं करना चाहिये जब तक इसे किसी योग्य आचार्य से न सीखा जावे। बलपूर्वक इसे कदापि नहीं करना चाहिये।

यदि यह केवल हमारे मल ही को दूर करता और हम को रोगो ही से बचाता तो भी यह अति उत्तम था परन्तु हमारे ऋषि इसका एक और उच्च प्रयोजन बतलाते हैं "इससे हमारा मन स्थिर और शान्त हो जाता है" आप इसका परीक्षण कर लें। आप यदि प्राणायाम के पश्चात संध्या करते हैं तो आपको 'ओ३म्' के जाप का कुछ और ही आनन्द आता है परन्तु न करने से चित्त एकाग्र नहीं होता। ऋषि का कथन है कि मन का श्वास से सम्बन्ध है। जब तक श्वास को नियमित न किया जावे तब तक मन स्थिर नहीं रहता। जब हम

तीव्र गति से दौड़ रहे हों तो हम किसी बात को विचार नहीं सकते। मन के एकाग्र होने के लिये श्वास का नियमित होना आवश्यक है।

प्राणायाम मन को शान्त करता है और हमारे वश में लाता है इसलिये प्रथम इसके कि हम परमात्मा का चिन्तन करें हमें पहले अपने मन को शान्त रखने का साधन भी लाना चाहिये।

प्राणायाम से हमको बल भी मिलता है।

हाँ, प्राणायाम हमको किस वक्त करना चाहिये ?

इस सम्बन्ध में मैं यह कहना चाहता हूं कि प्राणायाम करने का उचित समय प्रातःकाल और सायंकाल है। इस समय उदर खाली रहता है। भरे पेट जब कि अभी भोजन किया हो प्राणायाम नहीं करना चाहिये, इससे लाभ के बदले हानि होगी। भोजनोपरांत प्राणायाम करने से वमन हो जाता है और स्वास्थ बिगड़ जाता है। प्राणायाम का मंत्र यह है :—

ओं भुः । ओं भुवः । ओं स्वः । ओं महः ।
ओं जनः । ओं तपः । ओं सत्यम् ।

अर्थ—वह परमात्मा प्राणरुप है। वह परमात्मा दुखों को दूर करने वाला है। वह परमात्मा सुखों को देने वाला है। वह सबसे महान है। वह ही सृष्टिकर्ता है। वह परमात्मा दुष्टों को दण्ड देने वाला है। वह परमात्मा अविनाशी है।

यह परमात्मा के सात नाम हम प्राणायाम के समय लेते हैं। प्राणायाम को कम से कम तीन बार या अधिक बल हो तो अधिक बार करना चाहिये। अब चित्त को शान्त, स्थिर करके जो भक्त हैं जो परमात्मा का प्यारा है उसके समक्ष एक बड़ा प्रश्न आ जाता है और यह प्रश्न प्रत्येक धार्मिक पुरुष के समक्ष रहेगा।

हम अपने आत्मिक जीवन को एक युद्ध-स्वरुप देखते हैं। हम चाहते हैं कि हम शुभचिन्तन करें परन्तु हमारे भीतर अशुभ चिन्तन भी आ जाते हैं। हम चाहते हैं कि नेक हों, शास्त्रों का पाठ करें एवं शुभ-कार्यों में लगें अर्थात जितने धर्म कार्य हैं हम उनको करना चाहते हैं परन्तु वह सरलता से नहीं होते। प्रत्येक अवसर पर हमको अपने मन के साथ द्वन्द युद्ध करना पड़ता है ताकि हम अपने व्यवहारिक जीवन को स्थिर रख सकें।

सब मनुष्यों ने पाप की शक्ति को बलवान आभास किया है। उन्होंने परमात्मा से प्रार्थना की है कि वह उनको पाप से बचाएं। 'गुरु नानकदेव' जी ने भी ऐसे ही प्रार्थना की है।

'लूथर' का भी यह विचार था कि परमात्मा से बहकाने–

वाली एक शक्ति है जिसको शैतान कहते हैं। लूथर ने प्रार्थना करते समय अपने विचार के अनुसार ध्वनियां सुनी इधर-उधर दृष्टिपात किया। अन्त में यह ज्ञात हुआ कि यह शैतान ही है जो उसे बहकाना चाहता है। बौद्ध धर्मावलम्बी भी यही कहते हैं उनके गुरु बुद्धदेव जी का युद्ध 'मार' राक्षस के साथ हुआ जबकि भगवान बुद्धदेव ने परम ज्ञान प्राप्त करने की चेष्टा की और मार ने उनके समक्ष कई प्रलोभन प्रस्तुत करके उनको रोकना चाहा।

हर एक महापुरुष यह कहता है कि पाप की शक्ति महान् शक्ति है। सत्यार्थ प्रकाश में एक अनुच्छेद आता है जिस स्थल पर स्वामी जी ४८ वर्ष के ब्रह्मचर्य का वर्णन करते हैं। वह कहते हैं कि स्मरण रखना चाहिये कि काम के वेग को रोकना अति दुष्कार कार्य है। उनको ज्ञान था कि यह कठिन है। व्यवहारिक जीवन में ऐसा युद्ध सदैव होता रहता है क्योंकि पाप से बचने का प्रश्न हर एक धार्मिक व्यक्ति के समक्ष सदैव उपस्थित रहता है।

अघमर्षण मंत्र

ओ३म् ऋतञ्च सत्यञ्चाभीध्दात्तपसोऽध्यजायत
ततो रात्र्य जायत ततः समुद्रो अर्णवः ॥

अर्थ—वेद और नित्य प्रकृति से कार्यरुप जगत, हे प्रकाशमान ज्ञानस्वरुप प्रभो, आप से ही उत्पन्न हुए हैं। आप से ही रात्रि रुप महा-प्रलय होती है। आप से ही भूमि पर सागर तथा आकाश में जल कोष उत्पन्न होते हैं।

ओ३म् समुद्रादर्णवादधि संवत्सरो अजायत ।
अहोरात्राणि विदधद्विश्वस्य मिषतो वशी ॥

अर्थ—भूमिस्थ समुद्र से आप ही ने आकाशस्थ जलकोष मेघ की रचना की है उसके पीछे दिन, माह, वर्ष आदि का व्यवहार उत्पन्न हुआ। दिन और रात्रि की आपने रचना की। हे देव ! आप सारे विश्व को स्वभाव से वश में रखने वाले हैं।

ओ३म् सूर्य्या चन्द्रमसौधाता यथा पूर्वम् कल्पयत
दिवञ्च पृथिवीञ्चन्तरिक्ष मथो स्वः ॥

अर्थ—सूर्य्यं और चन्द्रमा आदि को हे परमेश्वर ! आपने पूर्व कल्प के समान बनाया है द्यौ लोक को, और पृथिवी को, अन्तरिक्ष को और अन्य लोक लोकान्तरों की भी आपने रचना की है । आप सुख स्वरुप हैं । प्रभो आपकी शक्ति अपरम्पार है ।

ऋगवेद मंत्र १० सु० १९० मंत्र १, २, ३

प्राणायाम के आगे संध्या का पाचवां मंत्र आता है जिस का नाम "अवनर्षग मंत्र" है । इसके अर्थ हैं—"पाप से बचना ।" हम यह कदापि नहीं स्वीकार करते कि पाप कभी क्षमा भी हो जाते है परन्तु दूसरे मत वालों का ऐसा विचार है । आर्य समाज यह मानता है कि पाप का दण्ड अवश्य मिलेगा ।

पापी और पुण्यात्मा में एक भेद है कि पापी पाप करता जाता है और पाप के संस्कार को दूर करने की चेष्टा नहीं करता परन्तु पुण्यात्मा कभी पाप कर बैठे तो पश्चाताप करता है और भविष्य के लिये मन को उस पाप के संस्कार से बचाने की चेष्टा करता है । हमारे हिन्दू भाई यह मानते हैं कि धर्म राज का एक मंत्री 'चित्रगुप्त' है । 'चित्रगुप्त' के अर्थ छवि उतारने वाला या लेखक है । मनुष्य की मृत्यु पर चित्रगुप्त उस के कर्मों के चित्र को धर्मराज के सन्मुख कर देता है कि इसने यह पाप किया अथवा वह पुण्य किया । कुछ शास्त्रों में—

'चित्रगुप्त' का अर्थ 'मन' किया जाता है और आकाश भी इसको कहते हैं क्योंकि हमारी प्रत्येक क्रिया का, हमारे चलने, फिरने, बोलने का इस आकाश के ऊपर चित्र पड़ जाता है। हमारे मन के ऊपर भी प्रत्येक वस्तु का, क्रिया का संस्कार पड़ता है ।

'जान स्टुअर्ट मिल', जो इंग्लैंड के प्रसिद्ध दार्शनिक हुए हैं अत्यन्त धार्मिक पुरुष थे, बह किसी के साथ पाप नहीं करते थे, अपशब्द कभी उनकी जिह्वा पर नहीं आया था । कार्यालय जाते हुए उनका आवागमन शहर के किसी ऐसे मार्ग से होता था जहां वेश्याएं निवास करती थीं । वह स्त्रियां आपस में लड़ती झगड़ती तथा अश्लील शब्दों का प्रयोग करती थीं । किसी मित्र ने स्टुअर्ट मिल को कहा कि आप इस बुरे मार्ग से न जाया करें क्योंकि इसका आप पर बुरा प्रभाव पड़ेगा परन्तु मिस्टर मिल, ने जो कि एक नेकदिल और दृढ़ संकल्प के मनुष्य थे तथा अपने मन पर उनका पूरा अधिकार था, यह कह कर टाल दिया करते थे कि यह हो नहीं सकता कि मुझ पर उन अश्लील शब्दों का कोई प्रभाव हो सके । संयोग से आठ या दस वर्षों के पश्चात वह रोग ग्रसित हो गये और मूर्छित हो गये । इस अचेतनावस्था में, जबकि उनका नियंत्रण उनके दिल और दिमाग से उठ गया, उनकी जिह्वा से वही अपशब्द निकलने लगे जो कभी वेश्याओं के मुख से उनकी गली में से निकलते

समय निकला करती थीं।

चेतना में रहकर महान पुरुष अपने विचारों को दबा सकते हैं परन्तु रोगावस्था में वह अधिक बलवान होकर बाहर निकल आती है। हम चाहें अथवा न चाहें परन्तु हमारे मन पर एक प्रकार का चित्र पड़ता जाता है। पाप का प्रभाव होता है और पुण्य का भी। जो पाप हम करते हैं उसका दण्ड अवश्य मिलता है परन्तु आवश्यक नहीं कि दण्ड अवश्य उसी समय मिल जावे। यदि अभी नहीं तो विलम्ब से ही सही परन्तु मिलेगा अवश्य। महान पुरुष जानता है कि मेरे आत्मा पर बुरा प्रभाव पड़ा और वह उसी समय से अपने आत्मा की शुद्धि करनी प्रारम्भ कर देता है परन्तु पापी नहीं करता।

बुरे प्रभाव से बचने हेतु इन मंत्रों को स्वामी दयानन्द जी ने पाप से बचने का मंत्र कहा है परन्तु यह नहीं कहा कि यह दण्ड से बचाने वाला मंत्र है। मनुस्मृति में भी वर्णन है कि जब कोई व्यक्ति पाप करे तो अघमर्षण मंत्र का जप करे इसका यह अर्थ नहीं कि तुम दण्ड से बच जावोगे बल्कि यह उस संस्कार को दूर करेगा जो पापाचार को तुम्हारे हृदय पर डालता है। वह यह मंत्र है:—

ओ३म् ऋतं च सत्यं चाभीध्दातपसो ऽध्यजायत।
ततो रात्र्य जायत ततः समुद्रो अर्णवः ॥१॥

ऋगवेद मं० १० सू० १९० मंत्र १

ओ३म् समुद्रादर्णवादधि संवत्सरो अजायत।
अहो रात्राणि विदधद्विश्वस्य मिषतो वशी ॥२॥

ऋगवेद मं० १० सू० १९० मंत्र-२

ओ३म् सूर्य्या चन्द्रमसौधाता यथा पूर्वम् कल्पयत।
दिवञ्च पृथिवीञ्चान्तरिक्षमथो स्वः॥३॥

ऋगवेद मं० १० सू० १९० मंत्र-३

यह तीन मंत्र और ऋगवेद से लिये गये हैं। संसार में दो नियम काम कर रहे हैं। प्रथम——शारीरिक कार्य अर्थात भूख या प्यास का लगना या किसी चोट का आ जाना। इसको वेद में सत् कहा है। द्वितीय——आचरण सम्बन्धी नियम, यह बहुत उच्च है और पापी इसका चिन्तन तक नहीं कर सकता। "सत्य बोलो, रियायत करो, बेईमान मत बनो" यह सब आचरण सम्बन्धी नियम हैं। इनको वेद में ऋत् कहा है। जब कोई बेईमान व्यक्ति बेईमानी करता है तो वह जानता है कि मैं नियम तोड़ रहा हूं परन्तु वह समझ लेता है कि यह आचरण सम्बन्धी नियम मुझे दण्ड नहीं दे सकता यह विचार गलत है। दण्ड अवश्य मिलता है। यदि हम बेईमानी से धन अर्जित करते हैं तो उसका बुरा प्रभाव हमारी सन्तान पर पड़ता है। हमारी सन्तान खराब होती है और हमारा अपना फल अच्छा नहीं

होता । हमारा मन अशान्त रहता है ।

सत् और ऋत् जो दो प्रकार के नियम (अभिद्यात) परमात्मा के ज्ञान से तपस्या और उसकी महाशक्ति से उत्पन्न हुए । यह सब वस्तुओं को सुथर रखने के लिये मौजूद है । जब परमात्मा ने नियम पैदा कर दिये (क्योंकि यह उसमें मौजूद थे) तो रात्रि पैदा हुई ।

यह सृष्टि सदैव रहने वाली नहीं है । विद्वान मानते हैं कि यह किसी न किसी दिन नष्ट होगी और अवश्य होगी ....एक दिन आवेगा जब सूर्य की उर्जा समाप्त हो जावेगी और पृथ्वी ठण्डी पड़ जावेगी । विज्ञान यह प्रमाणित करता है कि यह पृथ्वी किसी समय में गोलाकार थी और अग्नि के समान गर्म और चमकने वाली थी । जब यह ठण्डी हुई तो वन ही वन इसमें उत्पन्न हो गये । पत्थर का कोयला जो कि पर्वतों की तह के अन्दर पाया जाता है इसका प्रमाण है कि यह कोयले की खाने इन वनों का अवशेष हैं । हिमालय के शिखर और चट्टानों पर समुद्री जन्तुओ की अस्थियां पाई जाती हैं जिस से प्रमाणित होता है कि जहां आज पर्वत है पहले समुद्र था और जहां समुद्र है वहां पर्वत थे । इस वास्ते वर्तमान सृष्टि नित्य नहीं है । इसका आरम्भ था और अंत भी होगा । आप इसके साथ इसकी आयु का चिन्तन करें । वर्तमान सृष्टि कब बनी,

इसके पूर्व क्या था ? अभिप्राय यह कि हमको मानना पड़ता है कि सृष्टि-क्रम का आरम्भ कोई नहीं । यह अनादि काल से ऐसा ही है और आद्यांत काल तक ऐसा ही चला जावेगा ।

यदि परमात्मा अनादि है और यदि वर्तमान सृष्टि प्रथम और अंतिम है तो परमात्मा का सदैव के लिये सृष्टिकर्ता होना ठीक नहीं रहता । अतः हमको मानना पड़ता है कि जिस तरह परमात्मा अनादि है उसी तरह सृष्टि क्रम का यह प्रवाह अनादि है कोई समय था कि पहले पहल रात्रि थी, न सूर्य्य था और न चन्द्र । अंधकार ही अंधकार चतुर्दिक घेरे हुए था । 'मनु' ने भी ऐसा ही लिखा है:—

आसीत इंद

रात्रि के पश्चात परमात्मा ने इच्छा की कि अंधकार को दूर किया जावे । मनुस्मृति में परमात्मा को अंधकार को दूर करने वाला लिखा है ।

इसके पश्चात परमात्मा ने उछलने वाला समुद्र उत्पन्न किया । इस हलचल वाली प्रकृति अवस्था से परमात्मा ने सम्वत्सर उत्पन्न किया ।

सम्वत्सर को वर्ष कहते हैं । संस्कृत में सम्वत्सर को

प्रजापति भी कहते हैं। प्रजापति को ब्रह्मा या हिरण्यगर्भ भी कहते हैं और ब्रह्मा के यह अर्थ भी लेते हैं जबकि प्रकृति हल-चल के कारण गोलाकार हो जाती है।

इस सम्वत्सर प्रकाशमान गोलाकार से परमात्मा प्राकृतिक ढङ्ग पर प्रत्येक वस्तु को अपने अधिकार में रखता है, दिन और रात्रि को धारण करते हुए सूर्य्य, चन्द्र और पृथ्वी को, लोक और लोकान्तरों को, जैसा पहले था, उत्पन्न किया। मनुस्मृति में भी इसका वर्णन आता है। इस गोलाकार में परमात्मा ने इस तरह वास किया जिस प्रकार अण्डे में जीव करता है। जब वह फट गया तो सूर्य्य, चन्द्र आदि उत्पन्न हुए।

इस मंत्र में सृष्टि उत्पत्ति का वर्णन है तथा इसमें परमात्मा की महानता का वर्णन किया गया है। जब हम इस मंत्र के अर्थों पर विचार करते हैं तो हमें परमात्मा की असीम शक्तियों का विचार आता है पाप के अर्थ हैं परमात्मा की आज्ञा के विरुद्ध चलना। यदि मैं चोरी करने लगूँ और उसी समय यदि मेरा अधिकारी मेरे समक्ष उपस्थित हो जावे तो क्या चोरी का विचार मेरे हृदय से भाग नहीं जावेगा। इसी प्रकार परमात्मा की महानता को अनुभव करने से पाप करते समय पाप दूर भाग जाता है। हाँ जो लोग अपने परमात्मा को किसी विशेष स्थान में बन्द करके रख छोड़ते है उनके भीतर परमात्मा की श्रेष्ठता और महानता का विचार न आए तो

न आए परन्तु एक आर्य से कदापि ऐसा नहीं हो सकता कि वह इस परमात्मा की महानता को न स्वीकार करे।

नैतिक जीवन एक संग्राम है। पाप पुण्य को दबाना चाहता है। इस देवासुर संग्राम में हमें किसी सहारे की आवश्यकता है। तो क्या हमें किसी साधारण व्यक्ति का सहारा लेना चाहिये या जो महान से महान है और सबको उत्पन्न करने हारा और पोषणकर्ता है। यह मंत्र आदेश करता है कि हे मानव ! तू उस परमात्मा को अपना मित्र समझ, उसी ने तुमको उत्पन्न किया है। वही तेरा सहारा है, वही तेरी माता है, वही तेरा पिता है, वह ही सम्बन्धी और मित्र वह ही तेरा धन है, वह ही तेरा सर्वस्व है। इसलिये पाप से दूर भागने हेतु तू उसी पर-मात्मा का सहारा ले। लड़ते हुए बालकों को माता शान्त करा तो देती है, जब माता क्रुद्ध हो रही हो तो घर का वयोवृद्ध उसको शान्ति दे सकता है यदि वह भी अशाँत हो तो सिवाय परमात्मा के और कहां से (शान्ति की) सहायता मिल सकती है। हम सब अशाँत हैं, हम किससे शाँति पावें। वह कौन सा महान पुरुष है जिसकी हम सहायता लें।

मुहल्ला निःसंदेह एक गृह की तुलना में बड़ा है परन्तु मुहल्ले की शहर के समक्ष क्या स्थिति है। शहर की प्रदेश के समक्ष एवं प्रदेश की देश के समक्ष क्या स्थिति है। भारतवर्ष एशिया के समक्ष कोई स्थिति नहीं रखता और एशिया समस्त

संसार के समक्ष बिलकुल तुच्छ है और यह संसार इस सौर मंडल में एक साधारण वस्तु है और यह सौर मंडल इस ब्रह्मांड के दूसरे सौर मंडलों के समक्ष तुच्छ है। तो फिर आप ही बताएं कि एक ब्रह्मांडपति के समक्ष इस छोटे से मनुष्य की क्या स्थिति और शक्ति है। इस प्रकार चिन्तन करने पर हम अपनी तुच्छता को अनुभव कर सकते हैं और हमारे हृदय में परमात्मा की महानता असर कर जाती है। हम उसको प्रत्येक स्थान पर उपस्थित अपना अधिकारी, हमारे पापों का दण्ड देने वाला एवं अपना सच्चा पथ प्रदर्शक समझने लग जाते हैं।

वह पवित्र है और उसकी पवित्रता का चिंतन करने से हम पवित्र बनते हैं। वह महान है, उसकी महानता का चिंतन करने से हम महान बनते हैं। वह पापों से दूर है और हमारे पापों को जानने वाला और उनका दण्ड एवं मुक्ति देने वाला है। इसका चिंतन करके हम पापों से बचने हेतु चेष्टा करते हैं। मैं आपसे निवेदन करता हूं कि आप इन मंत्रों पर ध्यान देवें और इनके तात्पर्य से लाभ उठाएं।

संध्या के प्रथम तीन मंत्रों में मन की शांति, अङ्गों की शुद्धि के लिये प्रार्थना की गई है और इस मंत्र में अङ्गों को शुद्ध करने और शुद्ध रखने का ढङ्ग बतलाया है। परमात्मा करे कि हम लोग इन मंत्रों पर भलीभांति विचार करें, अधर्म से विमुख हों और पाप से बच करके परमात्मा की ओर जाने के भागी हों।

ओ३म् शन्नो देवीरभिष्टय आपो भवन्तु पीतये। शंयोरभिस्रवन्तु नः।

—: ओ३म् :—

मनसा परिक्रमा मंत्र

ओं प्राची दिगग्निरधिपतिरसितो रक्षिताऽऽदित्या इषवः। तेभ्यो नमोऽधिपतिभ्यो नमो रक्षितृभ्यो नम इषुभ्यो नम एभ्यो अस्तु। योऽस्मान् द्वेष्टि यं वयं द्विष्मस्तं वो-जम्भे दध्मः ॥१॥

ओं दक्षिणा दिगिन्द्रोऽधिपतिस्तिरश्चिराजी रक्षिता पितर इषवः। तेभ्यो नमो०............(आगे पूर्ववत्) ॥२॥

ओं प्रतीची दिग्वरुणोऽधिपतिः पृदाकु रक्षिताऽन्नमिषवः। तेभ्यो नमो०... ... ...(आगे पूर्ववत्) ॥३॥

ओं उदीची दिक् सोमोऽधिपतिः स्वजो रक्षिताऽशनि-रिषवः। तेभ्यो नमो०... ... ...(आगे पूर्ववत्) ॥४॥

ओं ध्रुवा दिग्विष्णुरधिपतिः कल्माषग्रीवो रक्षिता वीरुध इषवः। तेभ्यो नमो०... ... ...(आगे पूर्ववत्) ॥५॥

ओं ऊर्ध्वा दिग् बृहस्पतिरधिपतिः श्वित्रो रक्षिता वर्षमिषवः। तेभ्यो नमो०... ...(आगे पूर्ववत्) ॥६॥

[अथर्ववेद ३।६।२७। १ से ६ तक]

मनसा परिक्रमा मंत्र

"मनसा परिक्रमा" इस शब्द के अर्थ, मन के द्वारा घूमना है। आपने देखा होगा कि सनातनी (पौराणिक) बन्धु जिस समय सन्ध्या करते हैं तो वह सूर्य्य को देखते हुए एक पैर के सहारे चारों ओर घूमते हैं। किसी वस्तु की परिक्रमा करना उसका आदर करना समझा जाता जाता है। यही कारण है कि मंदिरों के चारों ओर भी घूमा जाता है। परन्तु स्वामी दयानन्द जी ने यह देख कर कि परमात्मा की परिक्रमा असंभव है और वह हमारी शक्ति के बाहर है। इसलिये उन्होंने यह आज्ञा दी है कि मन के द्वारा परिक्रमा करने की चेष्टा करनी चाहिये, यद्यपि यह मन से भी नहीं हो सकती जैसा उपनिषद् का वाक्य है :—

अनेजदेकं मनसो जवीयो नैनद्देवा आप्नुवन पूर्वमर्षन।
तद् धावतोऽन्यानत्येति तिष्ठत् तस्मिन यो मातरिश्वा दधाति।

अर्थ—इन्द्रियां देवता उस तक नहीं पहुंच सकतीं क्योंकि वह वहां पहले ही उपस्थित है। मन की शक्ति संसार की समस्त शक्तियों से बढ़ कर है और यह एक क्षण में योरप, अमरीका और अन्य दूसरे लोक-लोकान्तरों तक पहुंच जाती है

परन्तु परमात्मा इससे भी अधिक वेगवान है। इसलिये पूरे तौर पर मन से भी परमात्मा की परिक्रमा नहीं हो सकती फिर भी हम इसके द्वारा उस तक पहुंचने का यत्न करते हैं।

मनसा परिक्रमा के ६ मंत्र हैं और आपको उनका पाठ विदित है। उन मंत्रों में सर्वप्रथम दिशाओ का नाम है। अर्थात पूर्व, दक्षिण, पश्चिम, उत्तर, नीचे, ऊपर। उन मंत्रों में परमात्मा के ६ नामों का वर्णन है अर्थात अग्नि, इन्द्र, वरुण, सोम और विष्णु तथा बृहस्पति।

अग्नि से तात्पर्य ज्ञानस्वरुप तथा अग्रणी अर्थात आगे ले जाने वाले परमात्मा का नाम है। इन्द्र से धन, शक्ति वीर्य, बल सामर्थ्य देने वाले परमात्मा का, सोम से शान्त स्वभाव प्रक्रिया करने वाले का, विष्णु से सर्वव्यापक का, वरुण से सृष्टि, हृदयों में व्यापक परमात्मा का, बृहस्पति से आकाश के स्वामी या वेद के पति।

इससे आगे यह बतलाया गया है कि परमात्मा अन्धकार से रक्षा करने वाले हैं। परमात्मा तिरिक्षराजी (टेढ़े चलने वालों) से रक्षा करने वाले हैं। वह हमारे पृष्ठ भाग की विषैले प्राणियों (अजदहा आदि से) बचाने वाले हैं वह स्वयं उत्पन्न-कीटादि से रक्षा करने वाले हैं। वह रोगों और श्वेत कुष्ट से रक्षा करने वाले हैं आदि आदि…………

इसके पश्चात इषवः (बाणों) का वर्णन है। प्रथम मंत्र का इषवः 'आदित्य' है। आदित्य का अर्थ ४८ वर्ष का ब्रह्मचारी और सूर्य्य की किरणें हैं। दूसरे मंत्र में 'पितर' आया है। इस का अर्थ माता-पिता या वह लोग जो बुद्धि द्वारा हमारी रक्षा करने वाले हैं और उनके द्वारा रक्षा किये जाने का वर्णन है। यह शब्द ऋतुओं का भी बोधक है और इसी प्रकार उनके इषवः विद्युत, बृक्षादि और वर्षा का जल वर्णन किये गये हैं।

सायण के अर्थ:–

अब अवलोकन करना चाहिये कि 'सायण' ने इनके क्या अर्थ किये हैं। इस दिशा में विचार से प्रतीत होता है कि सायण के किये हुये अर्थों को बुद्धि स्वीकार नहीं करती। सायण बतलाता है कि पूर्व की दिशा में काले सर्प से रक्षा करने वाला सूर्य्य औ इसी प्रकार प्रत्येक मंत्र में विभिन्न प्रकार के सर्पों का वर्णन है जिनसे रक्षा करने हेतु उनमें प्रार्थना की गई है गोया सर्पों की पूजा पर यह मंत्र लगाए गये हैं परन्तु केवल इसके कि वेदों में सर्प की पूजा मानी गई है सायण कुछ और नहीं बतलाता है कि वह रक्षा करने वाले सर्प कहाँ रहते हैं। आया इस लोक में अथवा पाताल लोक में।

ऐसे अर्थों को बुद्धि स्वीकार नहीं करती। वेद मंत्रों के अर्थ पदार्थ विद्या से मिलते हैं। जिस परमात्मा ने वेदों का ज्ञान

दिया उसने सृष्टि नियम को बनाया, इसलिये सृष्टि नियम और वेदों में कोई विरोध नहीं होना चाहिये।

वेद मंत्रों के अर्थ तीन प्रकार के होते हैं। आध्यात्मिक, अधिभौतिक और अधिदैविक।

इन ६ मंत्रों में अग्नि, इन्द्र आदि जो शब्द आते हैं––उन के सम्बन्ध में साधारण पुरुष के लिये यह समझना कठिन है कि पूर्व का अग्नि शब्द से और दक्षिण का इन्द्र से क्या सम्बन्ध है। विचारशील वैज्ञानिक विचार करें तो किसी प्रकार उनका तात्पर्य यह समझ में आ सकता है। जैसे छठवें मंत्र में श्वित्रो-रक्षिता वर्षमिषवः आया है। इससे यह प्रतीत होता है कि श्वेत-कुष्ट वर्षा के द्वारा दूर हो सकता है लेकिन हम इस सम्बन्ध में पूर्ण सम्मति नहीं दे सकते क्योंकि इस विषय का मंडन करना किसी योग्य डाक्टर का कार्य है और इसी प्रकार किसी विद्वान का कार्य है कि वह वेद की सच्चाई को परखे कि बनस्पति और आदित्य (सूर्य्य) की किरणें जो वर्णन की गई हैं इनसे जीव मात्र की रक्षा होती है। पर केवल हम इतना जानते हैं कि जंहां पर धूप होती है वहाँ पर प्लेग नहीं होती। ऐसे ही सुर्य्य की किरणों से और भी असंख्य लाभ हैं। मैं इन मंत्रों के बैज्ञानिक अर्थ करने के योग्य नहीं कोई वैज्ञानिक कर सकता है।

(मंत्र) ओं प्राची दिगग्निरधिपति रसितो रक्षिता-ऽऽदित्या इषवः । तेभ्यो नमोऽधिपतिभ्यो नमो रक्षितृभ्यो नम इषुभ्यो नम एभ्यो अस्तु । योऽस्मान् द्वेष्टि यं वयं द्विष्मस्तं वो जम्भे दध्मः ॥

अर्थ—पूर्व दिशा में प्रकाश (ज्ञान) स्वरुप ईश्वर हमारे स्वामी हैं। अन्धकार से रक्षा करने वाले हैं । आदित्याः अर्थात सूर्य्य की किरणें (तेजस्वी आप्तविद्वान) उसके इषवः = बाणरुप (प्रेरक) हैं (जो ईश्वर के गुण और ईश्वर के रचे हुए पदार्थ जगत की रक्षा करने वाले हैं) उस स्वामी को हमारा नमस्कार हो । जो हमसे द्वेष करता है (या) जिस अज्ञान से धार्मिक पुरुष अथवा पापी पुरुष से हम द्वेष करते हैं । उस द्वेष भाव को आपके विनाशक शक्ति के सन्मुख रखते हैं ।

इस मंत्र का यह भी अर्थ हो सकता है कि—काम, क्रोध आदि जो हमारे भीतरी शत्रु हैं उनको जीतें और वश में लावें ।

(मंत्र) ओं दक्षिणादिगिन्द्रोऽधिपति स्तिरश्चिर.जी रक्षिता पितर इषवः । तेभ्यो नमोऽधिपतिभ्यो नमो रक्षितृभ्यो नम इषुभ्यो नम एभ्यो अस्तु । योऽस्मान् द्वेष्टि यं वयं द्विष्मस्तं वो जम्भे दध्मः ॥

अर्थ—दक्षिण दिशा में (इन्द्रः) ऐश्वर्यवान ईश्वर हमारे स्वामी हैं

आप हमारी कुटिल स्वभाव वाले प्राणियों से (टेढ़े चलने वाले कीट पतङ्गादि पंक्ति से/कुटिल मार्गों, अपवित्र साधनों से बचने का भाव) रक्षा करने बाला है । ज्ञानी लोग (आपकी रक्षक व पालक शक्तियां / चन्द्र किरणें) हमारी बांण के समान रक्षा करती हैं । प्रभो ! आप की पालक शक्तियों का हम स्वागत व आदर करते हैं । हे जगत के स्वामी ! आपको हमारा नमस्कार है । हे रक्षा करने वाले प्रभो ! आपको हमारा नमस्कार है। हे भगवन् ! हम आपकी रक्षक, पालक शक्ति को नमस्कार करते हैं । परमेश्वर ! हम आपको नमस्कार करते हैं । जो हमसे द्वेष करता है तथा जिनके दुर्गुणों के कारण हम उनसे द्वेष करते हैं, हम उनको आपके न्याय पर छोड़ते हैं ।

[नोट—चन्द्रकिरणों से विष का नाश होता है शीतलता विष का नाशक होती है । इसलिये जल या पहाड़ों में रहने वाले सर्प कम विषैले होते हैं ।]

(मंत्र) ओं प्रतीची दिग्वरुणोऽधिपतिः पृदाकु रक्षितान्नमिषवः । तेभ्यो नमोऽधिपतिभ्यो नमो रक्षितृभ्यो नम एभ्यो अस्तु । योऽस्मान् द्वेष्टि यं वयं द्विष्मस्तं वो जम्भे दध्मः ॥

अर्थ—पश्चिम की दिशा में (पृष्ठ की ओर) हे सर्वोत्तम प्रभो !

हमारे अधिपति हैं। विषैले प्राणियों (छिपकर घात करने वालों) से आप हमारी रक्षा करने वाले हैं। आपके उत्पन्न किये पदार्थ बांण के समान रक्षा करने वाले हैं। हे पीछे की दिशा के स्वामी ! आपको नमस्कार करते हैं। भगवन् ! हम आपके उत्पन्न किये सम्पूर्ण पदार्थों का सत्कार करते हैं। हम आपका अभिवादन करते हैं। जो दुष्ट जन हमसे द्वेष करते हैं तथा दुर्गुणों के कारण जिनसे हम द्वेष करते हैं, हम उनको आपके ही न्यायरूपी सामर्थ्य पर छोड़ते हैं।

[नोट — अन्न प्रत्येक भोज्य पदार्थ को कहते हैं। यहां अन्न से अभिप्राय घृत से है जो विषनाशक है।]

(मंत्र) ओं उदीची दिक् सोमोऽधिपतिः स्वजो-रक्षिता शन्निरिषवः । तेभ्यो नमोऽधिपतिभ्यो नमो रक्षितृभ्यो नम इषुभ्यो नम एभ्यो अस्तु । योऽस्मान द्वेष्टि यं वयं द्विष्मस्तं वो जम्भे दध्मः ॥

अर्थ — उत्तर (बाईं ओर) की दिशा में जो शान्ति स्वभाव वाले स्वामी हैं, स्वयंभू और हमारे रक्षक हैं। आप अजन्मा हैं। प्रभो ! आप (विद्युत के समान दुष्टों से हमारी रक्षा हेतु) बांण के समान साधन हैं। हे सोमपरमेश्वर — पार्श्व में व्यापक प्रभो ! हम आपको नमस्कार करते हैं। हे रक्षक प्रभो ! आपको हमारा

नमस्कार है। आपके रक्षा करने के साधनों का हम सत्कार करते हैं। आपका अभिवादन करते हैं। जो अज्ञान से हमसे द्वेष करते हैं और जिनसे दुर्गुणों के कारण हम उनसे द्वेष करते हैं उनको हम आपके वश में छोड़ते हैं।

[नोट विद्युत के गर्जन (कड़क) से भाद्रपद में, वर्षा में अधिक उत्पन्न मक्खी, मच्छरादि स्वजात कीट नष्ट हो जाया करते हैं।]

(मंत्र) ओं ध्रुवा दिग्विष्णुरधिपतिः कल्माषग्रीवो रक्षिता वीरुध इषवः । तेभ्यो नमोऽधिपतिभ्यो नमो रक्षितृभ्यो नम इषुभ्यो नम एभ्यो अस्तु । योऽस्मान् द्वेष्टि यं वयं द्विष्मस्तं वो जम्भे दध्मः ॥

अर्थः - नीचे की दिशा में हे व्यापक परमेश्वर, अधिपति हैं और काली गर्दन वालों से (रङ्ग-बिरङ्गे गर्दन वाले विषैले जीव जन्तुओं, कीटाणुओं से) आप हमारी अनेक प्रकार की वनस्पतियों वृक्ष-लतादि बाण के समान रक्षा करते हैं। हे नीचे की दिशा के स्वामिन् ! हम आपको नमस्कार करते हैं। हे सर्व रक्षक प्रभो ! हमारा आपको नमस्कार है। भगवन् ! हम आपकी उत्पन्न की हुई उन रक्षक औषधियों का सत्कार करते हैं। हे प्रभो ! हम आपका अभिवादन करते हैं। जो दुष्ट जन हमसे द्वेष करते हैं तथा जिनके दुर्गुणों के कारण हम उनसे द्वेष करते हैं उनको हम आपके न्यायरूपी सामर्थ्य में छोड़ते हैं।

[नोटः—काली गर्दन वाले (कल्माषग्रीवो) से अभिप्राय धूएँ आदि से उत्पन्न विषैले वायु—कार्बनिक एसिड से है। इस विषैले वायु को वृक्ष आदि अपने भीतर ग्रहण करके बदले में प्राणप्रद वायु 'आक्सीजन' भीतर से निकालते हैं।]

(मंत्र) ओं ऊर्ध्वा दिग् बृहस्पतिरधिपतिः श्वित्रो रक्षिता वर्षमिषवः । तेभ्यो नमोऽधिपतिभ्यो नमो रक्षितृभ्यो नम इषुभ्यो नम एभ्यो अस्तु । योऽस्मान् द्वेष्टि यं वयं द्विष्मस्तं वो जम्भे दध्मः ॥

अर्थः—हे महान प्रभो ! आप ऊपर के लोकों में व्यापक, ज्योतिमय, ज्ञानस्वरुप—परमेश्वर, आप स्वामी हैं और श्वेत कुष्टादि रोगों से रक्षा करने वाले हैं। वर्षा का जल बाणों के समान हमारे मस्तिष्क व शारीरिक ताप का निवारण करती है। हे ज्ञान स्वरुप परमेश्वर ! हम आपकी ज्ञानामृत रुपी वर्षा का स्वागत करते हैं। भगवन् ! हम आपका अभिवादन करते हैं। जो दुष्ट जन हमसे द्वेष करते हैं तथा जिनके दुष्ट गुणों से हम उनसे द्वेष करते हैं उन सभी को हम आपके ऊपर न्यायार्थ छोडते हैं।

[नोटः—श्वित्रः यद्यपि श्वेत कुष्ट को कहते हैं परन्तु यहां सामान्य रोग के अर्थ में है। वर्षा जल रोगनाशक होता है इसलिये अंग्रेजी औषधियों में उन्हें तरल करने हेतु वर्षा के जल (Ague) के मिलाने का विधान है।]

छहों मंत्रों के स्पष्ट भाव का चित्र

सं०	दिशा	अधिपति	किससे रक्षा करता है	साधन क्या हैं
१	पूर्व	अग्नि	असित—अंधकार से	सूर्य्य किरण
२	दक्षिण	इन्द्र	टेढ़े चलने वाले सर्पादि से	चन्द्र किरण
३	पश्चिम	वरुण	विषैले जन्तुओं से	घृत
४	उत्तर	सोम	स्वय उत्पन्न कीटादि से	विद्युत
५	नीचे	विष्णु	विषैले गैस से	बृक्षादि
६	ऊपर	बृहस्पति	रोगों से	वर्षा का जल

इन मंत्रों में परमात्मदेव को विभिन्न नामों से वर्णन करके उनकी शक्तियों को दर्शाया है। इसका यह अर्थ नहीं कि ज्ञान स्वरुप परमात्मा पूर्व दिशा में, धन वाले परमात्मा दक्षिण दिशा में विद्यमान है बल्कि परमात्मा सब दिशाओं में विद्यमान है और उन इषवों द्वारा हमारी रक्षा करते हैं जो इन मंत्रों में वर्णन किये गये हैं। मनुष्य के लिये यह आवश्यक है कि वह इन इषवों के लिये परमात्मा का कृतज्ञ हो और उसके समक्ष नमन करे।

इन मंत्रों से हम क्या सीखते हैं ?

इन मंत्रों में प्रबलता से परमात्मा की सर्वव्यापकता का वर्णन किया गया है जिससे मनुष्य के हृदय में यह विचार स्थित हो जाता है कि परमात्मा सर्वव्यापक है । तम भाग जाते हैं और मनुष्य के जीवन में अद्भुत परिवर्तन आ जाता है । जो मनुष्य चतुर्दिक परमात्मा का राज्य देखता है उसका शत्रु क्या बिगाड़ सकते हैं। जिन पुरुषों ने इस सच्चाई को अनुभव कर लिया है कि परमात्मा सर्वव्यापक है और हमारे रक्षक हैं, उनका जीवन पलट गया और उन्होंने महान कार्य कर दिखाए । जिन्होंने इस सत्य को अनुभव नहीं किया उन्होंने धक्के खाए और खराब हुए।

संसार के कई मनुष्य इस प्रकार के हैं कि उन पर जब थोड़ी कठिनाई आती है तो वह परमात्मा से विमुख हो जाते हैं। उनको अल्प ज्ञान होता है । वह दुख के तह तक नहीं पहुंच सकते और समझ नहीं सकते कि इससे परमात्मा को हमारी भलाई की क्या इच्छा है । इसलिये धार्मिक पुरुष की चितवृत्ति यह होनी चाहिये कि दुख और कठिनाई में परमात्मा से विमुख न हो बल्कि सहनशील बन जावे ।

धार्मिक विचार से आदर्श पुरुष वह है जो अपनी इच्छा को परमात्मा की इच्छा में लीन कर देता है और वह प्रत्येक दशा

में परमात्मा की इच्छा का प्रधान विचार रखता है चाहे उस की इच्छा परमात्मा की इच्छा के विरुद्ध ही हो। सच्चे भक्त परमात्मा की इच्छा के समक्ष आह तक नहीं करते और अपने आपको उसकी इच्छा में लीन कर देते हैं। स्वामी दयानन्द जी मृत्यु के समय परमात्मा से भारतवर्ष के रक्षा की प्रार्थना नहीं की अपितु यह कहते प्राण त्यागे कि "हे प्रभु ! आपकी इच्छा पूर्ण हो"............ ।

आवश्यक है कि मनुष्य परमात्मा की इच्छा अनुभव कर ले तथा दुख एवं कष्ट को बड़ी प्रसन्नता से सहे। हमारी दृष्टि बहुत छोटी है। हम यह नहीं समझ सकते कि यह विपदा या कठिनाई जो हम पर आई है, हमारे कल्याणार्थ है अथवा दुख के लिये है। परमात्मा ऐसी कृपा करें कि हम उनकी इच्छा में अपनी भलाई समझे एवं विद्वानों की सत्संगति और शुद्धियों के यज्ञ से बलवान होकर संसार में उत्तम रीति से जीवन व्यतीत करें । इन वेद मंत्रों का आशय है।

—: ओ३म् :—

उपस्थान मंत्र

ओ३म् उद्वयं तमसस्परि स्वः पश्यन्त उत्तरम् ।
देवं देवत्रा सूर्यमगन्म ज्योतिरुत्तमम् ॥

(यजु० ३५ । १४ ॥)

ओ३म् उदु त्यं जातवेदसं देवं वहन्ति केतवः ।
दृशे विश्वाय सूर्य्यम् ॥

(यजु० ३३ । ३१ ॥)

ओ३म् चित्रं देवःनामुदगादनीकं चक्षुर्मित्रस्य—
वरुणस्याग्ने । आ प्रा द्यावापृथिवी अन्तरिक्षँ
सूर्य्य आत्मा जगतस्तस्थुषश्च स्वाहा ॥

(यजु० ७ । ४२ ॥)

ओ३म् तच्चक्षुर्देवहितं पुरस्ताच्छुक्रमुच्चरत् ।
पश्येम शरदः शतं जीवेग शरदः शतँ श्रृणुयाम
शरदः शतं प्र ब्रवाम शरदः शतमदीनाः स्याम
शरदः शतं भूयश्च शरदः शतात् ॥

(यजु० ३६ । २४ ॥)

—: ओ३म् :—

ओ३म् अग्ने नय सुपथा राये अस्मान् विश्वानि देव वयुनानि विद्वान । युयोध्यस्मज्जुहुराणमेनो भूयिष्ठां ते नम उक्तिं विधेम ॥

आर्य भाइयों,

मैंने आपके समक्ष, अभी तक, "मनसापरिक्रमा मंत्रों" की व्याख्या प्रस्तुत की है अब अगले मंत्रों की व्याख्या करुंगा । हमने प्रार्थना की कि हमारी संध्या अशान्ति से रहित हो हमें शान्ति मिले (और हम प्रसन्न रहें ।) इसके पश्चात यह प्रार्थना की कि हमारे (शरीर के) अङ्ग पुष्ट हों, हमारी शक्तियां अधिक हों, इनमें बल हो एवं इसका प्रयोग हम अच्छी तरह कर सकें । तद्पश्चात हमने इस बात की प्रार्थना की कि शारीरिक बल के साथ पवित्रता का दान भी हमको मिले । यदि केवल शारीरिक बल प्राप्त हुआ तो इसके केवल यही अर्थ हैं कि हम अश्वों पर आरुढ़ तो हुए परन्तु हमको ज्ञात नहीं कि वह हमको किधर ले जावेंगे, गर्त में अथवा सुन्दर स्थान पर । इस कारण हमने प्रार्थना की कि जितनी भी शक्तियां हममें हों वह सब की सब हमको पवित्रता की ओर ले जावें परन्तु यह प्रार्थना करते हुए कि हमारे भीतर पवित्र शक्तियां हों और हमारे भाव अच्छे

हों। हमने यह अनुभव किया कि वह परमात्मा हमको कोई ऐसा साधन दें जिससे हम पाप से बच सकें। इस कारण 'अघ षंण मंत्र' हमको मिला। परमात्मा—हमने देखा कि महान् है तथा वह उत्पन्न करने वाला है, वह चेतन है, वह हमारी—माता है, हमारा पिता है। इनकी महानता का चिन्तन करने से हम पाप से दूर रहते हैं। इसके पश्चात हमने अनुभव किया कि वह परमात्मा हमारा अधिपति (सर्वत्र फैला हुआ) है। विद्वान तथा प्राकृतिक शक्तियां उसके बाण हैं। उसकी शक्तियां महान हैं। वह इन शक्तियों के द्वारा हमारा पालन करता है जिनकी विशेषता यह है कि जहां वह दग्ध करती हुई प्रतीत होती हैं वहां वास्तव में हमारे हेतु वह कल्याणकारी होती हैं। हमने प्रार्थना की कि जो हमारी आकाङ्छाएं हैं वह (हे पिता) आपकी हों क्योंकि आपका दिया हुआ दण्ड भी ऐसा ही प्रेम से से भरा हुआ है जैसी आपकी कृपा।

हम, आज आगे बढ़ते हैं। संध्या का वह आदर्श हमारे समक्ष आता है जिसे 'उपस्थान' कहते हैं। 'उप' अर्थात निकट और 'स्था' के अर्थ ठहरना। इसके अर्थ हैं निकट बैठना। इसमें सन्देह नहीं कि पाप हमारा शत्रु है और कई एक शक्तियां हैं जो हमको गिराना चाहती हैं। (अपने बचाव हेतु) हमको किसी अच्छे सहारे की आवश्यकता है। एक दृष्टान्त से मैं यह बात आपके समक्ष प्रगट करना चाहता हूं:—छोटे बालक मिल

कर एक स्थान पर खेल रहे हैं, खेलते-२ वह गली में थोड़ा घर से दूर हट कर चले जाते हैं। वहाँ वह सब मिलकर अपने एक साथी को तङ्ग करते हैं। कोई उससे उपहास करता है, कोई मारना चाहता है परन्तु वह पीड़ित बालक झट ही अपनी माता की गोद में जा बैठता है। वहाँ वह निर्भय हैं, प्रसन्न है, खेलता है, हंसता है और प्रसन्न होता है। वह जानता है कि अपनी माता की गोद में वह हर प्रकार से सुरक्षित है। ठीक इसी प्रकार हमारी दशा है। (परमात्मा हमारी माँ है और हम उस के बालक) पाप हमें बिगाड़ना चाहता है। इससे बचने के लिये हमको अपनी माता का सहारा लेना चाहिये। जब आत्मा चाहता है कि मैं ऐसे स्थान पर पहुंच जाऊं जहां पर कोई भय न हो तो उस स्थान पर जाने हेतु किसी साधन का होना भी आवश्यक है। उपनिषद् में आता है:—

यः सेतुरीजानानामक्षरं ब्रह्मयत् परम्।
अभयं तितीर्षतां पारनाचिकेतं शकेमहि ॥
(कठ० तृ० व० २)

परमात्मा अभय किनारा है। लोग भवसागर से पार उतर कर अभय किनारा की ओर जाना चाहते हैं। जब उपासक उस स्थान पर जाता है, वह शत्रुओं से बच कर परमात्मा के पास जा बैठता है।

अगले तीन मंत्र उपासना के हैं। यह हमको शिक्षा देते हैं कि हम किस प्रकार से परमात्मा के पास जा सकते हैं और अभय हों सकते हैं। वह मंत्र यह हैं :—

ओं उद्वयं तमसस्परि स्वः पश्यन्त उत्तरम् ।
देवं देवत्रा सूर्यमगन्म ज्योतिरुत्तमम् ॥

(यजु० ३५ । १४ ॥)

ओं उदु त्यं जातवेदसं देवं वहन्ति केतवः ।
दृशे विश्वाय सूर्य्यम् ॥

(यजु० ३३ । ३१ ॥)

अर्थः—हे परमात्मन् ! हम अत्यन्त श्रद्धा और भक्ति के साथ आपके, पाप से दूर अन्धकार, अज्ञान रहित सुखमय स्वरुप को सदैव देखे जो कि प्रलय के बाद भी शेष रहने वाला है, अविनाशी है। प्रभो ! दिव्य गुणों से युक्त आप ही विद्वानों का परित्राण करने वाले हैं। हम आपके अनुग्रह से आपके प्रकाशमय, उत्तम स्वरुप को प्राप्त करें (ऐसी कृपा आप हम पर करें।)

हे वेदों को उत्पन्न करने वाले सर्वान्तर्यामी परमेश्वर ! हे महान देव, वेदों की ऋचांए एवं संसार के पदार्थ हमको आपके पास पहुंचाने में पताकाओं के समान मार्गदर्शन करते हैं ताकि हम विश्व के परम प्रकाशक जगत की आत्मा आपका दर्शन कर सकें, आपको

अनुभव कर सकें, आप तक पहुंच सकें।

परमात्मा के गुणों का वर्णन करके (इस मंत्र में) यह प्रार्थना की गई है कि हम उस परमात्मा को प्राप्त हों जो पाप से दूर है, जहाँ अज्ञान जा नहीं सकता। हम उस परमात्मा को देखें जो कि ज्ञानदाता है, जो प्रकाश का देने वाला है। मैं आप का ध्यान दो शब्दों की ओर दिलाना चाहता हूं—'तमसस्परि' और 'उत्तमम्'।

ब्राह्मण ग्रन्थ में लिखा है कि 'तम' के अर्थ पाप के हैं। मैंने 'तमस' के अर्थ 'अज्ञान' और 'पाप' से किये हैं। क्योंकि जो अज्ञान से दूर है वह पाप से दूर है। हमको अन्धकार और पाप से बचने के लिये उसके निकट जाना है जो सबसे उत्तम ज्योति है, हमको उसके निकट जाना है। इस स्थान पर इससे का अभिप्राय उस परमात्मा से है जो अज्ञान से रहित और पवित्र है। पाप और अज्ञान से हटकर हमको इस ज्ञानमय ज्योति स्वरुप परमात्मा की शरण में जाना है जो कि ज्ञान का भंडार है।

एक तीसरा शब्द है 'पश्यन्त' जिसका अर्थ है 'देखते हुए' अर्थात उस उत्तम ज्योति को देखते हुए हम उसके निकट जावे। पिछले मंत्रों में इसका वर्णन नहीं आया है। परमात्मा का दर्शन एक साधारण बात नहीं है इसलिये इसका वर्णन वहां नहीं है। इसका दर्शन उस समय तक नहीं होता जब तक आत्मा इन

सब साधनों में से न गुजरे जिनका बर्णन संध्या के पूर्व मंत्रों में आ चुका है।

इस दर्शन का क्या फल है ?

हमें पाप से निकल कर उत्तम ज्योति के पास जाना है। उपनिषद् में आया है :—

यदा पश्यः पश्यते रुक्मवर्णं कर्तारमीषं पुरुषं ब्रह्मयोनिम् ।
तदा विद्वान पुण्य पापेविधय निरञ्जन परमसाम्यमुपैति ॥

(मुन्डक० तृतीय० ३)

अर्थः—जिस समय देखने वाला (जीवात्मा) देखता है उस प्रकाशमय प्रभू को जो वेद का कारण है, जो सम्पूर्ण संसार का स्वामी (कर्ता) है तब वह ज्ञानी पुरुष, पुण्य और पाप को छोड़ कर शोक, मोह, राग, द्वेष से अलग होकर परम गुणवान हो जाता है। वह उस समय परमात्मा के गुणों वाला हो जाता है।

मैं इस बात की व्याख्या नहीं करता कि पुण्य को फेकने के क्या अर्थ हैं।

जिस प्रकार बालक दूसरों से बचने हेतु प्यारी माता की गोद में जा बैठता है, ऐसे ही हम पापरूपी शत्रुओं से बचने के लिये इस बात की इच्छा करते हैं कि इस समस्त संसार की माता, जिसने इस जगत को रचा और जो सारे जगत का पालन

और पोषण करती है (उसके साये में शरण लें।) यदि बालक को केवल यह कह दिया जाय कि डरो मत, तुम्हारी माँ तुम्हारे पास है और तुम्हारा पिता भी उपस्थित है तो उसे कदापि संतोष नहीं होगा जब तक कि वह उनको नेत्रों से देख न ले। ठीक ऐसी ही हमारी स्थिति है जब तक परमात्मा के दर्शन न हों हमको न तो वह शान्ति ही प्राप्त होती है और न वह सुख उपलब्ध होता है जिसका बर्णन इस मंत्र में हैं :—

भिद्यते हृदय ग्रन्थिछिद्यन्ते सर्व संशयः ।
क्षीयन्ते चास्य कर्म्माणि तस्मिन दृष्टे परावरे ॥

(मुन्डकोपनिषद् तृतीय० ८ ॥)

अर्थात इस परमात्मा को देखने पर हृदय की गांठ खुल जाती है, सब संशय दूर हो जाते हैं। जब सामने देख लिया तो संशय किसका ? इसके (अर्थात) जिसने परमात्मा का दर्शन कर लिया हो उसके हृदय में पड़ी अभिलाषाओं (काम) की गांठ (सब कर्म) नष्ट हो जाते हैं, उसके सब पाप दूर हो जाते हैं। 'उपस्थान' के अर्थ यह हैं कि हम उस परमात्मा के दर्शन लाभ करें।

सबसे प्रथम और आवश्यक बात यह है और अत्यन्त आवश्यक है कि हममें दर्शन करने की इच्छा हो। हम सब इस संसार में सोये हुए हैं. संयमी उस रात्रि को जागता है जब और

दूसरे सोते हैं और वह उस दिन को सोया रहता है जब कि और दूसरे जागते हैं ।

गीता का श्लोक:—

या निशा सर्वभूतानां तस्यां जागर्ति संयमी ।
यस्यां जाग्रति भूतानि सा निशा पश्यतो मुनेः ॥

(अध्याय २ श्लोक ६९)

एक पहलू में हम सोए हुए हैं और दूसरे पहलू में हम जागते हैं । जहाँ तक इस संसार का सम्बन्ध है हम जागते हैं। जब कभी कोई हमारी वस्तु उठा कर ले जाता है तो हम उससे लड़ने लग जाते हैं परन्तु जहां तक परमार्थ का सम्बन्ध है, हम सब सोए हैं, कुछ चिन्ता नहीं करते कि हमारा क्या फल होगा परन्तु संयमी परमार्थ की निशा में जागता है और स्वार्थ की निशा में सो जाता है । यह भगवान श्रीकृष्ण जी का तात्पर्य है।

एक और वेद मंत्र में कहा है कि जो हमारी इच्छाएं हैं उसको पूर्ण करने वाला परमात्मा है ।

हे पिता ! जिस इच्छा को मन में रखते हुये आपके निकट आते हैं वह इच्छाएं हमारी पूर्ण हो जाती हैं । आप ही उसके देने वाले हैं ।

जब परमात्मा के दर्शन की इच्छा हममें उत्कट होगी तो

यदि उचिक ढङ्ग से हम उसके निकट जाएं तो वह अवश्य हमारी कामनाएं पूर्ण करेंगे ।

इन मंत्रों में जीवात्मा को कहा गया है कि जब "तुम इस योग्य हो कि पाप और पुण्य को त्याग कर स्वतंत्र हो जावो और तुम कामना करो कि तुम्हें मेरे दर्शन हों ।" ज्योंही यह अभिलाषा उद्भूत हुई (तो जीवात्मा परमात्मा के सामीप्य का उद्योग करता है) उसका मन सुखी और शान्त हो जाता है और आप पुण्यवान बनता है । जब तक यह इच्छा उत्पन्न नहीं होती तब तक कुछ नहीं बनता ।

ओ३म् उदुत्यं जातवेदसं देवं वहन्ति केतवः
दृशे विश्वाय सूर्य्यम् ॥

वह परमात्मा जो सर्व प्रकार के (परमार्थ और स्वार्थ के लिये) धन को देने वाले हैं, जो चराचर जगत को जीवन देते हैं, उस परमात्मा के निकट हमको केतु ले जाते हैं । केतु के कई अर्थ होते हैं जो निम्नलिखित हैं:—

केतु

१	२	३
(१) किरण	(२) ज्ञान की किरण	(३) मार्ग पर ले जाने हेतु जो पताकाएं होती हैं।

वह केतु जो हमको परमात्मा के निकट ले जाते हैं क्या हैं ? मार्ग की पताकाएं पथ दर्शाती हैं। इस संसार में कौन सी पताकाएं हैं जो हमको सच्चे स्थान तक ले जाती हैं। इस मंत्र में इन पताकाओं की चर्चा नहीं है परन्तु आपके बोध हेतु कह देता हूं कि उनसे अभिप्राय बनारस, बन्द्राबन और कटक की पताकाओं से नहीं है बल्कि इनका तात्पर्य केवल ज्ञान से है। इसका प्रमाण दूसरे शास्त्रों में मिलेगा। योग शास्त्र से शास्त्र से मैं इन पताकाओं की चर्चा करना चाहूंगा।

सत्य यह है कि उस परमात्मा तक हम कभी नहीं जा सकते जब तक हमारा मन पवित्र और निर्मल न हो। इसके लिये संध्या में विशेष मंत्र आया है :—

"ओ३म् महः पुनातु हृदये":

(वह परमात्मा जो महान से महान है हमारे हृदय को शुद्ध करे)

सबसे प्रथम साधन ऋषियों ने हृदय की शुद्धि बताई है। जब तक यह न हो हम ईश्वर का दर्शन नहीं कर सकते। जिस अवस्था में हम और आप लोग हैं, हमारी शुद्धि नहीं हो सकती। हम आपस में एक दूसरे को चाहे कितना ही अच्छा कहें परन्तु स्मरण रहे कि हृदय की स्वच्छता अत्यन्त ही कठिन है। एक आँग्ल पुस्तक से मैं आपको एक कहानी सुनाना चाहता हूं। एक बृद्ध पुरुष विचारता था कि मेरा जीवन सुख, शान्ति और नेकी

से व्यतीत हुआ है। मैंने किसी की वस्तु नहीं ली है, न किसी को मारा और न ही किसी को दुख दिया है। इस प्रकार अपने हृदय में सोच, विचार ही रहा था कि एकाएक उसके बीते दिनों का चित्र उसके नेत्रों के समक्ष दृष्टिगोचर हुआ। उसने अपनी स्मरण शक्ति से पूछा—बता क्या कहती है ? उसकी स्मरण शक्ति ने उत्तर दिया—तूने तो हत्या की है। बृद्ध हैरान हुआ—मैं और हत्या ? स्मरण शक्ति ने उत्तर दिया—हाँ, एक समय तुम दो व्यक्ति आपस में बैठे हुए वार्ता कर रहे थे कि तुम्हें क्रोध आ गया। क्रोध में आकर तुमने एक बोतल उसको फेंक कर मारी। खैर, वह व्यक्ति तो बच गया परन्तु केवल अपनी फुर्ती से, तुमने तो उसको मार ही दिया था। तुमने दूसरों की धन-सम्पत्ति भी अनाधिकृत ढङ्ग से लिया है। तुमने निःसहायों के कपड़े उतारे हैं। बृद्ध इस बात पर चौंक उठा। बार-बार पूछने पर ज्ञात हुआ कि उसके एक मित्र ने, उसे अपने बालकों का संरक्षक बना दिया था। पहले उसने बालकों का भलीभांति पालन पोषण किया, पीछे एक बार बृद्ध के मन में विचार आ गया कि न हो बालकों की किसी प्रकार हत्या कर डाले और उनकी सम्पत्ति स्वयं ले ले।

हम में से नेक से नेक व्यक्ति कितनी बार निर्धनों के वस्त्र उतारता है, कितनी बार हिंसा करता है और किस कदर पाप करने पर उतारु होता है। बड़े-बड़े ऋषि मुनि यह कहते आए हैं कि हम तो नीच और पापी हैं, इसका यह अर्थ नहीं कि वह

सचमुच में अकर्म के द्वारा नीच और पापी हैं, बल्कि वह अपनी कमजोरियां अनुभव करते हैं।

योग-शास्त्र में एक सूत्र बतलाता है कि हृदय की स्वच्छता के लिये चार बातें होनी चाहिये। संक्षेप में वह निम्नलिखित है :—

संसार में चार प्रकार के व्यक्ति होते हैं।

(१) संसार में सुखी। (२) संसार में दुखी और विपदाओं से ग्रसित। (३) पुण्य करने वाले चाहे वह दुखी हों या सुखी हों। (४) पापी।

चाहिये तो यह कि जो सुखी हैं हमारे अन्दर उनके लिये प्रेम का भाव हो परन्तु यदि हम किसी को उन्नति की ओर अग्रसर देखें तो हम ईर्ष्या करने लग जाते हैं। योग शास्त्र में उसको बुरा कहा गया है। यदि कोई व्यक्ति धनी है तो हम उस की निन्दा करना प्रारम्भ कर देते हैं। और यदि उसके पुत्र हैं तो हम हृदय में कुढ़ते हैं। यदि उसने मकान बनवाया है तो हमारे शरीर में आग लग जाती है, ऐसा नहीं चाहिये। योग-शास्त्र कहता है "आपस में मैत्री करो।" ऐसे व्यक्ति की सहायता करो और उसका साथ दो। हिन्दू लोग अपने आपको पवित्र समझते हैं, परन्तु मेरी यह राय है और सम्भवतः आप मेरे साथ इसमें सहमत न हों कि इनमें (हिन्दुओं में) सबसे

अधिक यह रोग है। यदि कोई विपदा में ग्रसित हो तो उसको सहायता नहीं देते हैं, कहते हैं, कि उसके कर्म बुरे हैं।

हममें सहिष्णुता और दयालुता या करुणा का भाव नहीं है। सहायता करना प्रत्येक के वश में नहीं है परन्तु करुणा का भाव तो अवश्य वश में है।

तृतीय बात यह है कि यदि किसी को अच्छा कार्य करते देखो तो उसका मोदन करो। छात्रावास में देखा जाता है कि जो नेक कार्यों की ओर झुकाव रखते हैं, जो संध्या, हवन आदि नित्य नियमों का पालन करते है, उनको दूसरे मनुष्य मक्कार कहना प्रारम्भ कर देते हैं विपरीत इसके कि हम उनका उत्साह-वर्धन करें हम उल्टे उनके पीछे पड़ जाते हैं। हममें मोदन का भाव होना चाहिये।

यदि कोई पापी है तो उसके साथ लड़ते ही न रहो बल्कि उसके साथ उपेक्षा करो। पापी के साथ मित्रता मत करो बल्कि उपेक्षा रखो। जलता हुआ कोयला जला देता है और बुझा हुआ कोयला काला कर देता है। कोयला गर्म हो या ठण्डा, हर प्रकार से उसके साथ मिलने से हानि ही होगी। ठीक ऐसे ही पापी पुरुष की दशा है। पापी पुरुष की तरफ उपेक्षा करनी अच्छी है। इन चार बातों से हृदय की शुद्धि होती है और हृदय की शुद्धि के बिना परमात्मा के दर्शन नहीं होते।

केतु के अर्थ ज्ञान है । इसके अर्थ हैं आत्मा और परमात्मा को जानना, चित्त की सफाई रखना, चिन्तन करके स्वाध्याय करना, परम साधन करना अर्थात ओ३म् का जप और उसके अर्थों का चिन्तन करना । यह महान अवलम्ब है । इस अवलम्बन से मनुष्य ब्रह्मलोक में महान होता है । यह सब चीजें हमको परमात्मा तक ले जाती हैं और यह सच्ची पताकाएं हैं । यह हम को सत्य मार्ग बताती हैं । जब हममें परमात्मा तक जाने की तीव्र इच्छा होती है, तो वह शक्तिवान, आश्चर्य रूप परमात्मा मित्र, वरुण एवं अग्नि का पथप्रदर्शक देवताओं को प्राप्त होता है । वही अन्तरात्मा, जीवन का दाता, देव, पृथ्वी, अंतरिक्ष में व्यापक है ।

ओ३म् चित्रं देवानामुदगादनीकं चक्षुर्मित्रस्य—
वरुणस्याग्ने । आ प्रा द्यावापृथिवी अन्तरिक्षं
सूर्य्य आत्मा जगतस्तस्थुषश्च स्वाहा ॥

यजु० ७ । ४२ ॥

अर्थः—प्रभो ! आप अपने अद्भुत स्वरुप से विद्वानों के हृदय मंदिर में प्रकाशित होते हो । आप सब भक्तों के कष्ट दूर करने के लिये परमोत्तम बल हो । भगवन् ! आप ही प्रकाशक हैं । सूर्य्य आदि लोकों के, जल तथा अग्नि के (ये सब आपकी ही शक्ति से प्रकाशित होते हैं ।) प्रभो ! आप सब ओर से द्यौ लोक को,

पृथ्वी लोक को तथा अन्तरिक्ष को धारण करते हो । हेप्र काशक देव, हे सर्वाधार परमात्मन् ! आप ही आत्मा हैं, आधार हैं, समस्त जंगम (जड़, स्थिर रहने वाले, अचल तथा स्थावर (चैतन्य प्राणी) जगत के आप ही संसार का कल्याण करने वाले हैं ।

वह परमात्मा देवों को प्राप्त होता है । मित्र वह है जो सबके साथ प्रेम करता है । अग्नि वह जो विद्वान हो, वेदो का ज्ञाता हो । वरुण श्रेष्ठ को कहते है ।

एक बार प्राणों में अर्थात प्राण और इन्द्रियों में झगडा हो गया । श्रोत्र (कान) कहते थे—हम बड़े है, जिह्वा कहती थी—मैं, नासिका (नाक) कहती थी—मैं, नेत्र कहते थे हम । हर एक सबसे श्रेष्ठ होने का दावा करता था । जब आपस में वह कोई निर्णय न कर सके तो प्रजापति के पास गये और उनसे न्याय मांगा । प्रजापति ने कहा कि मैं एक नियम बतलाता हूं इससे तुम लोग स्वयं निर्णय कर लेना । जिसके चले (निकल) जाने से तुम सबको कष्ट हो वह—सबसे श्रेष्ठ है । इस सिद्धांत को लेकर हर एक क्रम से अपनी श्रेष्ठता परखने लगा । सर्वप्रथम नेत्र ने शरीर छोड़ दिया बाकी शरीर पहले की भांति खाता, पीता, सुनता और सूंघता था अर्थात इस प्रकार निर्वाह करता था जिस प्रकार एक अन्धा व्यक्ति करता है, नेत्र इनका कुछ बिगाड़ न सके और शर्मिन्दा होकर वापस आ गये ।

इसके बाद श्रोत्र चला गया, इस पर भी वह देखते, खाते, अनुभव करते और चलते फिरते थे। इनका निर्वाह ठीक इसी प्रकार होता था जैसे एक बहरे व्यक्ति का होता है।

इसी प्रकार क्रम से जिह्वा, हाथ, पैर आदि चले गये परंतु अपनी कमजोरी के कारण शेष शरीर का कुछ न कर सके। जब प्राण की बारी आई तो अभी निकला ही न था अपितु केवल चलने की तैयारी ही करता था कि शेष सबका दम घुटने लगा। नेत्र बन्द हो गये, श्रोत्र सुन नहीं सके, जिह्वा बोल न सकती थी, हाथ काम से रह गये, पैर चल न सकते थे, जो जहाँ था वह वहाँ का वहीं रुक गया। सबने प्रार्थना की—हे भगवन्—हे प्राण! आपके बिना हम सब निरर्थक हैं, आप हमको न त्यागिये, आप हम सबसे श्रेष्ठ हैं।

एक अन्य स्थान पर उपनिषद् में वर्णन है कि प्राण क्यों बड़े हैं। शेष सब अङ्ग अपने-अपने रसों में लीन हो जाते हैं परन्त प्राण कभी भी अपने कर्म को नहीं छोड़ता। नेत्र यद्यपि शरीर के लिये देखती है किंतु बहुधा किसी सुन्दर वस्तु पर टिक जाती है। कानों को मीठे सुर का व्यसन है, नाक सुगन्ध के पीछे मारा-मारा फिरता है परंतु प्राण इस प्रकार की वस्तु है जिस को कोई वस्तु अपने कर्तव्य से विलग नहीं कर सकती। यह स्वयं कोई वस्तु ग्रहण नहीं करता और इसी कारण सर्वश्रेठ है। यदि यह हमारे भीतर न हो तो हम कुछ नहीं। ठीक इसी प्रका

एक निःस्वार्थ व्यक्ति का जीवन है। जब हमारे जीवन में एक लेशमात्र् भी स्वार्थपरता न हो तो उस समय हम अग्नि, मित्र और वरुण कहला सकते हैं।

जिस प्रकार पत्थर पर मिट्टी का ढेला फेंकने से ढेला स्वयं फूट जाता है परन्तु पत्थर को कुछ हानि नहीं पहुंचा सकता, ठीक ऐसे ही निःस्वार्थ व्यक्ति की दशा है। स्वामी दयानन्द प्राणवत् थे। लोगों ने उन पर पत्थर फेंके, अपशब्द कहे, बुरा भला कहा परन्तु उनका कुछ नहीं बिगड़ा बल्कि उल्टे लोग ही टूटे। हमको भी प्राणवत् होना चाहिये परन्तु एक पल एक जन्म में प्राणवत होना कठिन है। कई जन्मों के पश्चात् दयानंद, शङ्कर, बुद्ध, नानक जैसे प्राणवत महात्मा पैदा हुए हैं

जो ज्ञान स्वरुप परमात्मा है वह प्राणवत् व्यक्ति का नेतृत्व स्वयं करते हैं। वह हमारे चक्षु हैं, वह स्वयं आकर हमारे भीतर आ उपस्थित होते हैं। भजन में आप गाते हैं "मेरे हृदय आन बसो प्रभु मेरे हृदय आन बसो" जब सच्चे हृदय से कहा जाय तो सचमुच वह हृदय में आ जाते हैं।

एक छोटा सा नियम मैं और बतलाना चाहता हूं। लोहे की चुम्बक के हेतु आकर्षण है परंतु जब दोनों दूर हों तो कोई प्रभाव नहीं होता। उन्हें निकट लाते जावो जब वह एक विशेष सन्धि में आ जावेंगे तो आकर्षण प्रारम्भ हो जावेगा और जब

अति निकट हो जाते हैं तो झट मिल जाते हैं।

जब हम दूर हों तो परमात्मा हमको अपनी ओर नहीं खींचता परंतु जब निकट आना प्रारम्भ करते हैं तो थोड़ा-थोड़ा प्रभाव प्रारम्भ हो जाता है। परंतु जब हम अति निकट हो जाते हैं तो फिर हमें चलना नहीं पड़ता बल्कि रुकने से रुक नहीं सकते और वेग से परमात्मा हमको अपनी ओर खींच लेता है।

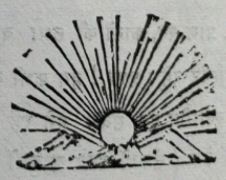
साधक (भक्त लोग) ठीक कहते हैं कि जब हम एक पग प्रभु की ओर जाते हैं, वह दो पग आगे आते हैं परन्तु जब तक हममें इच्छा नहीं होती, जब तक हम केतु का सहारा नहीं लेते हैं वह नहीं मिलते। जिस समय शुद्ध हो जाते हैं और श्रेष्ठ बन जाते हैं तो हमको ज्ञान आ जाता है फिर हमारा हृदय इस परमात्मा का सिहासन बन जाता है और इस समय जीवात्मा कहने लग जाता है :—

भिद्यंते हृदय ग्रन्थिश्छिद्यन्ते र्वं संशयः ।
क्षीयन्ते चास्य कर्म्माणि तस्मिन् दृष्टे

मेरे सब संशय दूर हो गये और हृदय के भेद खुल गये। जिस प्रकार बालक माता की गोद में जाकर निडर हो जाता है, हम भी उस सच्ची माता की शरण लेकर डर से रहित हो

जाते हैं। आवो, हम लोग सब मिल कर उस शक्तिदाता के आगे प्रार्थना करें :—

"हे ज्ञानस्वरुप पिता, हे करुणा के सागर। आप हम पर ऐसी कृपा करो कि हमारे चित्त में शान्ति हो, हमारे अङ्गों में बल हो, हमको आपका भय हो। हम—हे दीनानाथ ! आपको सर्वत्र व्यापक जानें, हमारे हृदय में आपसे मिलने की इच्छा हो, हम आपके ज्ञानमार्ग पर चलें। हे प्रभो ! हमारा जीवन उन्नत हो, इस जन्म में या, किसी अगले जन्म में, जब कभी हो, हम आपके समीप बैठें। आपका बल, आपका तेज, आपका यश और न्याय हमारे हृदय में हो। आप, हे परमात्मा ! इस आर्य जाति (श्रेष्ठ मनुष्य जाति) को अपना सच्चा भक्त बनाएं, हम आपके सच्चे सेवक बनें और आपकी आज्ञा का पालन करे।"



—:ओ३म्:—

उपस्थान (अन्तिम) मंत्र

ओ३म् तच्चक्षुर्देवहित पुरस्ताच्छुक्रमुच्चरत् । पश्येम शरदः शतं जीवेम् शरदः शतँ श्रुणुयाम शरदः शतं प्र ब्रवाम शरदः शतमदीनाः स्याम शरदः शतं भूयश्च शरदः शतात् ॥

(यजु० ३६ । २४ ॥)

अर्थः—हे परमेश्वर ! आप सर्वद्रष्टा हो; विद्वानों के आप परम हितैषी हो। वर्तमान सृष्टि के पूर्व से ही आप अनादि होने से विद्यमान हो। आप तेजोमय सर्वशक्तिमान रुप से वर्तमान हो—प्रभो ! हम आपके दिव्य स्वरुप को देखते रहें, सैकड़ों शरद ऋतुओं तक, सैकड़ों वर्षों तक हम जीवित रहें, सैकड़ों शरद ऋतुओं तक, सैकड़ों वर्षों तक हम आपका यशोगान सुनते रहें, सैकड़ों शरद कालों तक हन आपके यश का, आपकी प्रदत्त वेद वाणी का उच्चारण सैकड़ों शरद कालों में करते रहें । प्रभो ! हमारी आंखों की, प्राण की, कानों की तथा वाणी की शक्ति सैकड़ों वर्षों तक स्थिर रहे। प्रभो ! हम कभी दीन न बने, हम सैकड़ों वर्षों तक स्वाधीन एवं सबल बने रहें और जीवित रहें, हम सैकड़ों वर्षों तक (सैकड़ों शरद ऋतुओं का उपभोग करें।)

ओ३म् अग्ने नय सुपथा राये अस्मान् विश्वानि देव वयुनानि विद्वान् । युयोध्यस्मज्जुहुराणमेनो भूयिष्ठां ते नम उक्तिं विधेम ॥

मेरे प्यारे भाइयों,

मैंने आपके समक्ष इसके पूर्व उपस्थान मंत्रों की व्याख्या प्रारम्भ की थी, आज उसी शृङ्खला में—उपस्थान के अगले (अंतिम) मंत्र की व्याख्या आपके समक्ष प्रस्तुत करुंगा क्योंकि मैं संध्या और उपासना के मंत्रों की व्याख्या (आचमन, इन्द्रिय-स्पर्श, मार्जन, प्राणायाम तथा मनसा परिक्रमा मंत्र) प्रस्तुत कर चुका हूं ।

मैंने आपके चरणों में निवेदन किया था कि संध्या में बैठने से पूर्व हमारे लिये यह आवश्यक है कि हम सर्वप्रथम अपने चित्त को शान्त करें । हम लोग संध्या का आरम्भ होने से पूर्व आचमन मंत्र के द्वारा अपने शरीर को शुद्ध करें । हमने यह प्रार्थना की थी कि वह कल्याणकारी परमात्मा इस संसार में सर्वत्र शाँति को फैला दे । ताकि हम पर चारों ओर से शाँति को वर्षा हो । इसके पश्चात् हम परमात्मा से शक्ति पा सकते हैं—हमारा जीवन पवित्र होगा और फिर हम इस संग्राम के लिये तैयारी कर सकेंगे जो हर एक धार्मिक पट में एक न एक दिन अवश्य होता है । यह संग्राम पाप और पुण्य के मध्य में हैं ।

यह धर्म और अधर्म का संग्राम है। इस संग्राम में सहायतार्थ हम अघमर्षण मंत्र के द्वारा इस जगतपति, जगत के अधिष्ठाता का चिन्तन करते हैं और मनसा-परिक्रमा मंत्रों से सर्वव्यापक परमात्मा की महानता को अपने चित्त में अनुभव करते हैं। इस स्थिति तक पहुंच कर हम परमात्मा से प्रार्थना करते हैं कि जिस प्रकार भाव हमारे भीतर हों, जो हमारे कर्म और शक्तियाँ हों, उन सब शक्तियों के लिये उस परमात्मा को हमारा धन्यवाद हो। उसके पश्चात् मैंने उपासना मंत्रों की व्याख्या की थी यानी उद्वयं तमसस्परि से लेकर चित्रं देवानां……………… तक मैंने आपके चरणों में निवेदन किया था कि हमें परमात्मा के पास पहुंचने के लिये और उस अभय किनारा तक जाने हेतु जिसका वर्णन उपनिषदों में आता है, आवश्यक है कि हमारे अन्दर उद्‌बोधन-शक्ति पैदा हो, हमारी आत्मा निद्रा से जागे जिसमें (ग्रस्त होने के कारण) यह संसार के विषयों में फंसा है। हममें वह शक्ति आए जिससे हमारी आत्मा में यह इच्छा उत्पन्न होती है कि हम परमात्मा के दर्शन करें। हम केतु को प्राप्त हों जो कि हमें हमारे गन्तव्य स्थान तक ले जावे। मैंने निवेदन किया कि जब हमारे हृदय में परमात्मा के दर्शन की इच्छा पैदा होती है तो परमात्मा हमें उस इच्छा तक ही नहीं छोड़ देते अपितु जब वह इस इच्छा को हमारे भीतर मौजूद पाते हैं, जब वह उद्‌बोधन शक्ति को हमारे भीतर देखते हैं तो वह हमको अपनी ओर खींचते हैं और हमारी ओर आते हैं।

"चित्रं देवानां………" का यही अर्थ है कि जो वह चित्र स्वरुप परमात्मा है और अनन्त शक्तियों वाले वह भक्त-जिनको अकेला नहीं छोड़ते, केवल इस बात पर नहीं छोड़ते कि जितना ही यत्न करे उतना ही फल दे अपितु जब हम एक विशेष स्थिति तक यात्रा पूर्ण करते हैं तो वह हमारे हृदय में स्वयं आकर विराजमान होते हैं। जिस समय हमारे हृदय के भीतर विद्या और ज्ञान शक्ति उत्पन्न होती है तो वह स्वयं हमारे हृदय में विराजमान होते हैं इस दशा में यह मंत्र पाठ करते हैं :—

ओ३म् तच्चक्षुर्देव हितं पुरस्ताच्छुक्रमुच्चरत्। पश्येम शरदः शतं जीवेम शरदः शतँ श्रृणुयाम शरदः शतं प्रब्रवाम शरदः शतमदीनाः स्याम शरदः शतं भूयश्च शरदः शतात् ॥

सनातनी लोग (पौराणिक) इसे पाठ करते समय सूर्य्य की ओर देखते हैं। कुछ आर्य समाजी लोग भी स्वामी दयानन्द के भाव को न समझ कर (यह कहते हैं) कि सूर्य्य की ओर ध्यान करके इस मंत्र को पाठ किया जावे। वे सूर्य्य के सच्चे अर्थों को नहीं जानते-समझते। सूर्य्य के अर्थ बाहरी सूर्य्य नहीं अपितु भीतरी आध्यात्मिक सूर्य्य अर्थात परमात्मा के अर्थ लिये हैं। यहां पर जो इच्छा प्रगट की गई है, उस अन्तर्यामी परमात्मा के समक्ष प्रगट की गई है।

इस मंत्र के प्रथम भाग में परमात्मा के गुणों का वर्णन है। इसमें तीन शब्द विशेष तौर पर आते हैं:—"तत् चक्षुसो" वह परमात्मा नेत्र है। यदि हम किसी ऐसे स्थान पर चलें जो ऊंचा नीचा हो, तो नेत्र हमें गिरने से बचाते हैं। जब हम चलते हैं तो हमारे पथ को बतलाते हैं और यात्रा में हमको गंतव्य स्थान तक पहुंचाते हैं। परमात्मा—हमारे लिये भीतरी अध्यात्मिक नेत्र हैं। जो यात्रा हमें इस जीवन में करना है उस जीवन मार्ग के लिये वह परमात्मा ही चक्षु-रुप है। दूसरी बात यह पाई जाती है कि परमात्मा न केवल मार्ग ही बतलाते हैं अपितु वह देवहित है। स्वामी जी ने दो अर्थ किये हैं:—प्रथम–जिनको देवता अर्थात विद्वान लोग प्यार करते हैं। द्वितीय–देवताओं का जो हितकारी है। इस स्थान पर केवल यह अर्थ नहीं किया कि वह (परमात्मा) हमारे नेत्र बल्कि आशा दिलाई गई है कि उन लोगों के, जो उसके भक्त हैं, सहायक भी हैं। यदि किसी समय हम कष्ट में पड़ें तो हमें तङ्ग न होना चाहिये। हमें यह न समझ लेना चाहिये कि हमारे जीवन की आशाएं धूल में मिल गई बल्कि उस समय विश्वास रक्खो, परमात्मा सदैव नेकी के सहायक हैं। इस संसार में कभी भी यह नहीं हो सकता कि राम विजय को प्रीति न हो और रावण जीते। हाँ कुछ अवधि के लिये पाप की शक्ति हावी हो जाय तो हो जाय परन्तु सदा के लिये ऐसा नहीं हो सकता। जब तक परमात्मा इस जगत में विद्यमान है तब तक पाप का अधिपत्य पुण्य पर कभी नहीं हो

सकता इस मंत्र में विश्वास दिलाया गया है कि परमात्मा देवताओं के हितकारी हैं और सदैव उनका भला करने वाले हैं। तृतीय बात "पुरस्तात छुक्रमुचचरत" जो प्रारम्भ से है आरम्भ किया कि जो वह प्रारम्भ के प्रारम्भ से भी पूर्व था और जो सदैव रहेगा। जो अनादि काल से अनन्त काल तक (या यों कहो कि) सृष्टि और प्रलय के सिलसिले तक जो सदैव के लिये इस जगत के अधिपति हैं और इसमें विराजमान हैं। परमात्मा सदैव हमारे पथप्रदर्शक हैं, कुछ थोड़े समय के लिये नहीं हैं बल्कि वह सदैव हमारे पथ-प्रदर्शक चले आए हैं और बने रहेंगे।

इसके साथ 'शुक्र' का अर्थ पवित्र स्वरुप और पवित्रता रखने वाला है। परमात्मा के जो विशेषण इस मंत्र में किये गये हैं उनमें तीन बातों का विशेष वर्णन है।

प्रथम—परमात्मा सबके पथ-प्रदर्शक अर्थात मार्ग दिखाने वासे हैं। द्वितीय—हमको विश्वास दिलाया गया है कि जो इस पथ पर चलते हैं उनकी विजय होती है। जो इसके विरुद्ध चलते हैं उनका क्षय होता है। तृतीय—परमात्मा हमको पवित्रता देने वाले हैं। जब संसार के काम हमारे मन को मैला कर देते हैं उस समय परमात्मा हमारे मन को पवित्रता देने वाले होते हैं। इस परमात्मा के चरणों में जाकर हमारे मन की क्या इच्छा होती है?

"पश्येम शरदः शतं जीवेम शरदः शतँ श्रृणुयाम"

अर्थात हम सौ वर्ष देखें और सौ वर्षों तक जीयें, सौ वर्षों तक बोलें, सुनें, चलें-फिरें (और स्वतंत्र जीवन व्यतीत करें) यदि परमात्मा की इच्छा हो तो उससे भी बढ़कर हम इस संसार में आयु को भोगें।

इससे पहली बात जो प्रगट होती है वह यह है कि हमारी इच्छा होती है कि हम सौ वर्षों तक जीऐं, क्यों ?

ऐसा ज्ञात होता है कि परमात्मा के चरणों में रहकर पूर्ण आयु को भोगना और अमृत को ग्रहण करना आर्यों अर्थात श्रेष्ठ पुरुषों के जीवन का आदर्श था। जो मंत्र, हम प्रतिदिन, यज्ञ-हवन में पाठ करते हैं उनमें आता है: –

त्र्यम्बकं यजामहे सुगन्धिं पुष्टिवर्धनम् । उर्वारुकमिव बन्धनान्मृत्यो मुक्षीय माऽमृतात । त्र्यम्बकं यजामहे सुगन्धिं पतिवेदनम् । उर्वारुकमिव बन्धनादितो मुक्षीय मामुतः ॥६०॥

यजु० तृतीयोऽध्यायः

पदार्थः—हम लोग जो (सुगन्धिम्) शुद्ध गन्ध युक्त (पुष्टिवर्धनम् शरीर, आत्मा और समाज के बल को बढ़ाने

वाला (त्र्यम्बकम्) रुद्ररूप जगदीश्वर है, उसकी (यजामहे) निरन्तर स्तुति करें। इनकी कृपा से (उर्वारुकमिव) जैसे खरबूजा फल पक कर (बन्धनात्) लता के सम्बन्ध से छूट कर अमृत के तुल्य होता है, वैसे हम लोग भी (मृत्योः) प्राण व शरीर के वियोग से (मुक्षीय) छूट जावें (अमृतात्) और मोक्षरूप सुख से (मा) श्रद्धारहित कभी न होवें तथा हम लोग (सुगन्धिम) उत्तम गन्धयुक्त (पतिवेदनम्) रक्षा करने वाले स्वामी को देने वाले (त्र्यम्बकम) सबके अध्यक्ष जगदीश्वर का (यजामहे) निरंतर सतकार पूर्वक ध्यान करें और इसके अनुग्रह से (उर्वारुकमिव) जैसे खरबूजा पक कर (बन्धनात्) लता के सम्बन्ध से छूटकर अमृत के समान मिष्ट होता है वैसे हम लोग भी (इतः) इस शरीर से (मुक्षीय) छूट जावें (अमुतः) मोक्ष और अन्य जन्म के सुख और सत्यधर्म के फल से (मा) पृथक न होवें।

यजुर्वेद

अर्थात हम इन तीनों शक्तियों को यानी उत्पत्ति, पालन और प्रलय के धारण करने वाले की पूजा करें। जिस प्रकार खरबूजा जब तक कच्चा होता है अपनी बेल के साथ लगा रहता है परन्तु जब टूटता है तो पक कर ही टूटता है। इसी तरह परमात्मा से हमारी प्रार्थना है कि हम इस जीवन की लता से कच्चे न काटे जावें अपितु जब हम इससे अलग हों, हम धर्म की–

पवित्रता, पूर्ण आनन्द और नेकी की सुगन्ध को साथ लेते हुए उससे अलग हों और अमृत को प्राप्त हों। जिस प्रकार खरबूजा मिठास को लेकर बेल से अलग होता है ऐसे ही हम पूर्ण रीति से पक कर इस संसार लता बेल से अलग हों अर्थात कम से कम सौ वर्षों तम जीएं। हम लोग या हमारे भाई आजकल थोड़े ही समय में मृत्यु को प्राप्त हो रहे हैं। पिता के समक्ष प्रिय पुत्र, माता के समक्ष प्यारी पुत्री, भाई से भाई, प्यारे से प्यारा मृत्यु को प्राप्त हो जाता है। हमारी आयु बहुत कम होती जा रही है। मैं क्या कहूं हमारा जीवन आर्यों (श्रेष्ठ पुरुषों) का जीवन नहीं। यदि हम १०० वर्षों तक जीवन प्राप्त नहीं कर सकते और पहले ही मृत्यु को प्राप्त हो जाते है, तलवार से नहीं अपितु रोग से तो इससे यह प्रगट होता है कि हमारा जीवन वैदिक जीवन नहीं है और हमने वैदिक नियमों का पालन नहीं किया। जीवन के सम्बन्ध में एक व्यक्ति का कथन है कि हम कम जीएं परन्तु अच्छा जीएं अर्थात हमारा जीवन शुभ्र जीवन हो। इसके उत्तर में कहा जा सकता है कि दीर्घ शुभ्र जीवन इससे अच्छा है। इसलिये आर्य (श्रेष्ठ) लोग परमात्मा से बिनती किया करते हैं कि हम सौ वर्षों तक देखें, जीएं, चले फिरें और सुने।

जंगली जीवन से हमें क्या प्रतीत होता है। यदि आप १०० वर्षों तक जीते हैं परन्तु इन्द्रियों के दास और विषयों में

फंसे हुए तो एक ऐसे विषयी जीवन से साधारण जीवन को वेद में मनुष्य जीवन कहा गया है और आर्य जीवन को देवजीवन का नाम दिया गया है।

ओ३म् अग्ने ब्रतपते ब्रतं चरिष्यामि तच्छकेयं तन्मे-
राध्यताम्। इदमहमनृतात् सत्यमुपैमि ।।

(यजु० १५)

"हे परमात्मा, ब्रतपते अग्नि! मैं इस ब्रत को करुंगा। आप इसके पूर्ण करने के लिये मुझे शक्ति प्रदान करें। मैं इस असत् जीवन से सत् जीवन को प्राप्त होऊं।" सत् जीवन की शतपथ ब्राह्मण में व्याख्या की है :—

"मनुष्य जीवन—अनृत जीवन, से यज्ञ में प्रवेश करना, देव जीवन से और यह सत् का जीवन है।"

एक और उक्ति भी रक्खी गई है कि :—

"परोक्ष प्रिया इव हि देवाः प्रत्यक्षद्विषः"

अर्थात प्रत्यक्ष की ओर न ध्यान करने वाले बल्कि परोक्ष की ओर जाने वाले ही देवता हैं। पशु का जीवन केवल वर्तमान का जीवन है। जो कुछ उसके समक्ष रखो उसका हृदय उसको भोग करने को चाहता है। पतंग दीपक के प्रकाश पर मस्त हो जाता है।

उसे यह ज्ञात नहीं कि प्रकाश की गर्मी उसे जला देगी। वह केवल प्रत्यक्षसेवी है और उसे परोक्ष का ज्ञान ही नहीं। जो व्यक्ति धर्मात्मा नहीं, जो धर्म की ओर रुचि नहीं रखता, जिसमें संयम नहीं वह विषय को देखकर उसकी ओर भाग पड़ता है। संसार के विषय हमें अपनी ओर खींचते हैं। विषय हमें नीचे की तरफ ले जाते हैं और नेकी ऊंचाई की ओर। जिस प्रकार पर्वत की ऊंचाई की ओर चढ़ना कठिन है और नीचे की ओर मनुष्य स्वयं ही बहा चला जाता है। ठीक उसी प्रकार संसार में विषयी जीवन उतराई का जीवन और सरल है। व्यक्ति स्वयं ही भागा चला जाता है परन्तु उच्च शक्तियों की ओर चढ़ना उसके लिये कठिन हो रहा है। इसलिये हमारे शास्त्रकारों ने यह कहा है कि "देवता वह लोग हैं जिनमें संयमी व्यक्ति पाये जाते हैं।" अब यह जितनी शक्तियां हैं जैसे १०० वर्षों तक देखना, १००वर्षों तक जीना, श्रवण करना और चलना आदि। व्यक्ति को इन सबको संयम के साथ प्रयोग करना चाहिये। वह व्यक्ति जो सौ वर्षों तक जीता तो है परंतु बुरी वस्तुओं को देखता है, अश्लील साहित्य पढ़ता है, गंदे विषयों का भोग करता है, क्या उसका जीवन वैदिक जीवन हो सकता है? क्या उसके जीवन और स्वान (कुत्ते) के जीवन में कोई अंतर है? इसी प्रकार जो व्यक्ति गंदे गीत सुनता है और हर समय निन्दा-स्तुति में लगा रहता है तो क्या सचमुच उसके कान अपने सच्चे विषय को पूर्ण कर रहे हैं? वह व्यक्ति जिसका भोजन दूसरों

के आधीन हो क्या वह कह सकता है कि मैं स्वाधीनता से जीवन व्यतीत कर रहा हूं? ऐसा जीवन वैदिक जीवन कदापि नहीं हो सकता। यह पशु जीवन है। यह वह जीवन नहीं है जिसके हेतु वेद मंत्रों में हमारे लिये प्रार्थना की गई कि हम शुभ भावों से सुशोभित हुए शारीरिक, आत्मिक और सामाजिक उन्नति को करें, अच्छी तरह से रहें, बोलें, देखें और अपने जीवन को सफल करें। हमारे भीतर अवहित भाव न हों। उस के लिये इन मंत्रों में प्रार्थना की गई है।

यह परमात्मा हमको पथ दिखाने वाले हैं। वह हमारे हितकारी हैं, कभी हानि नहीं पहुंचाते—सदा पवित्र हैं। वह हमारे भीतर साधु-भावों को उत्पन्न करें ताकि हम पशु जीवन से निकल कर देव-जीवन की ओर झुकें। हम प्रतिदिन इसके लिये प्रार्थना करते हैं। आर्य जीवन हमें केवल प्रत्यक्ष की ओर से हटा कर परोक्ष की ओर ले जाता है। दो बातों की ओर हमें अवश्य ध्यान करना चाहिये। प्रथम यह कि हम इस संसार को अपना प्रत्यक्ष जीवन न माने। कुछ प्रत्यक्षवादी यह कहते हैं कि यही जीवन संसार में सब कुछ है, इस विचार के लोग नास्तिक हैं। कठोपनिषद् में यमाचार्य कहते हैं।

न सांपरायः प्रतिभाति बालं प्रमाद्यन्त वित्तमोहेन मूढ़म्।
अयं लोको नास्ति पर इति मानी पुनः पुनर्वंश मापद्यते में॥

(कठ० द्वि० ६)

अर्थात जो लोग इस जीवन को सब कुछ मानते हैं वह बार बार मेरे बन्धनों और फन्दों में आते हैं। जो लोग इस लोक को मानते और परलोक को कुछ नहीं मानते, वे लोग नास्तिक हैं और इनका जीवन आर्य सिद्धान्त के विरुद्ध है परन्तु इसके अर्थ आप कदापि यह न समझें कि आर्य जीवन में केवल परोक्ष ही होना चाहिये और प्रत्यक्ष को बिलकुल भुला देना चाहिये, यह कदापि नहीं अपितु प्रत्यक्ष और परोक्ष अपने में मिलाना चाहिये। जहां हम प्रत्यक्ष को देखें वहां परोक्ष का भी ध्यान रखें और जहां परोक्ष का चिन्तन करें वहां प्रत्यक्ष भी हमारे समक्ष रहे।

हमारा जीवन ऐसा होना चाहिये जिसमें हमारी जिह्वा, हमारे कान, नेत्र और दूसरी शक्तियां पाप में प्रयोग ही न होने पावें, हमारा जीवन देव-जीवन हो—और हमारा आचरण वेदानुकूल हो। इसीलिये प्रार्थना की गई है कि हे परमात्मा! हमारा जीवन शुद्ध हो और जिन शक्तियों का ऊपर वर्णन किया है उन का प्रयोग आपके नेत्रों के समक्ष हो और हम उन्हें उसी तरह से प्रयोग में लावें जिस तरह से आप मार्ग दिखलाएं और हमारी इच्छा आपके आधीन हो।

गायत्री मंत्र में भी यही प्रार्थना की गई है कि हम ईश्वर-परायण बनें। परमात्मा! आप हमको अपनी ओर ले जावें, बुद्धि को बल दें। चूंकि आप हाथ पकड़ कर ले जाने वाले और मार्ग दिखलाने वाले हैं, यह सारी शक्तियां आपके आधीन हैं और

कभी, आपके आज्ञा के विरुद्ध नहीं, आपके आदेश पर चलें।

धन्य हैं वह पुरुष, जिसकी शक्तियां परमात्मा की आज्ञा में हैं और जो अपने जीवन को परमात्मा के प्रेम और विश्वास में व्यतीत करता है।

आपने देखा होगा कि जब मनुष्य पर सम्मोहन क्रिया का प्रभाव होता है उस समय उसकी क्या दशा होती है। प्रथम-मनुष्य अपने मन के संकल्प और विकल्प को त्याग कर चित्त ढीला छोड़ देता है और फिर सम्मोहन करने वाला उसे कहता है कि तुम मेरे विरुद्ध चलने की चेष्टा मत करो अर्थात मुझे **Resist** मत करो, अपनी इच्छा मत रखो अपितु अपना मन मेरी इच्छा पर छोड़ दो। जब मनुष्य सम्मोहित हो जाता है तो सम्मोहन करने वाला उस पर अधिकार कर लेता है और फिर उससे भांति-भांति के कौतुक कराता है, उसे रुलाता है, हंसाता है, नचाता है और जो चाहे कार्य ले सकता है। इसी प्रकार से यदि हम चाहते हैं कि हमारा जीवन देव-जीवन हो तो हमारे लिये यह एक आवश्यक कार्य है कि हम अपने आप को ढीला छोड़ कर ईश्वर परायण हो जावें और परमात्मा की शक्तियों को अपने ऊपर कार्य करने दें। जो ईश्वर परायण होना नहीं चाहते, परमात्मा उनसे दूर है और जो उपासक अपने आप को परमात्मा के आधीन कर देते हैं, परमात्मा उनके निकट से निकट है। विश्वस्यनीय होकर सबसे पहले प्राणिधान का भाव अपने भीतर-

पैदा करो और फिर तुम्हारी इन्द्रियां पवित्र होंगी और तुम्हारी शक्ति बढ़ेगी । गायत्री मंत्र में दो बातें विशेष ध्यान देने योग्य हैं:—प्रथम—हम परमात्मा को हृदय में धारण करें ।

द्वितीय—परमात्मा हमारी बुद्धि को प्रेरणा करे ।

वह हमारे मन में, हृदय में, बुद्धि में विराजमान हों । जब यह भाव हमारे भीतर होगा तो हमारे हृदय और मस्तिष्क प्रकाशित और पवित्र होंगे । इसी प्रकार इन्द्रियों की शक्ति को परमात्मा के आधीन कर देना और उनसे आदेश मांगना यही एक धार्मिक और पवित्रता का जीवन है ।

आप 'गीता' को देखें, भगवान श्रीकृष्ण, अर्जुन को कहते हैं कि हे अर्जुन ! तू तो निमित्त मात्र है मैंने इन सबको मार दिया है । यह है भी सत्य, जब उपासक अपनी इच्छा को उपास्यदेव (परमात्मा) के अधीन कर देता है तो उससे कोई कार्य ऐसा नहीं हो सकता जो परमात्मा की इच्छा के विरुद्ध हो । इसी प्रकार से जो भक्तजन या महापुरुष हैं यद्यपि वह सांसारिक कार्यों में लगे रहते हैं परन्तु वह उन कर्मों में केवल निमित्त मात्र होते हैं ।

अपने आत्मा को अन्त करके उपासक अंतिम मंत्र में प्रार्थना करता है ।

गीता मंत्र

हे भगवानः—शिव भगवान-प्रभो ! आप भौतिक और परमार्थिक सुख देने वाले, आपके समक्ष पूर्ण-रीति से नमस्कार करते हैं । यदि हमने संध्या की तो इस भाव से की कि हमको यह प्राप्त हो और हमको वह प्राप्त हो । यदि हमने गायत्री जप किया तो इस कारण कि हमको धन मिले और हमारी शक्तियां अधिक हों ।

हां—यह सब कुछ अच्छा है परन्तु हे भगवन ! जब हम आपका आसरा लेवेंगे तो फिर ऐश्वर्य हमसे कहां भाग सकता है और यह वस्तुएं कब हमसे दूर रह सकती हैं । हे न्यायकारी परमात्मा ! जब हम आपका चिन्तन करते हैं तो न्याय का भाव किस प्रकार हमसे दूर रह सकता है । हे दयालु पिता ! आप दया के भन्डार हो, आप नियंता हो और सकल जगत को अपने नियम में रखने वाले हो । यह सब कुछ आपके भीतर उपस्थित है । हमने सब कुछ आपके आसरे पर छोड़ दिया है परन्तु केवल बाह्य वस्तु के हेतु नहीं (यद्यपि वह भी अच्छी है) परन्तु केवल पवित्रता के लिये ।

क्या ऊंचा आदर्श है, कितनी उच्च प्रार्थना की गई है । यह भाव हमको पर्वत के शिखर की ओर ले जाते हैं । इसमें कोई सन्देह नहीं कि हम पतित हैं और वह शिखर जिस पर-

हमें चढ़ना है बहुत ऊंची है परन्तु हमारा धर्म है कि हम उस पर चढ़ने का प्रयत्न करें, हम कई बार गिरेंगे परन्तु फिर उठें और हिम्मत तथा उत्साह से अपने आपको परमात्मा की गोद में ले जाने की चेष्टा करें। आवो हम सब मिल कर परमात्मा से प्रार्थना करें कि:—हे दयानिधे–परमात्मन्! आप हमको शक्ति दें कि हम अपने आपको आपके आसरे पर डाल सकें। हमको शक्ति दो ताकि हम आपके चरणों में उपस्थित होकर आपके आदेश को स्वीकार कर सकें। हमारी इन्द्रियां आपके अधीन हों, हमारी बुद्धि निर्मल हो और हम स्वार्थ से रहित हों।

हे दीनानाथ! आप करुणा करो और हमें शक्ति दो कि हम अपने आपको, आपके चरणों में डाल सकें।

दयालु परमात्मा! आप हमारी इस तुच्छ-प्रार्थना को स्वीकार करो।

—: ओ३म् :—

गायत्री मंत्र

"ओ३म् भूर्भुवः स्वः। तत्सवितुर्वरेण्यं

भर्गो देवस्य धीमहि। धियो यो

नः प्रचोदयात्।"

गायत्री की महिमाँ और स्वरुप

वह यह पवित्र मंत्र है जिसकी महिमा सारे शास्त्रों ने गाई है। श्रुति, स्मृति, पुराण और इतिहास सभी इसके गुण गाते हैं। शास्त्रों ने इस मंत्र के जप पर बहुत बल दिया है। लिखा है कि यह मंत्र जहां एक ओर शारीरिक रोगों और दुखों की निवृति तथा आरोग्यता और सुखों की प्रवृत्ति का साधन है वहीं दूसरी ओर आत्मा को परमात्मा से मिला कर परमानन्द में मग्न करने का तीव्रतर उपाय है (बहुत सरल उपाय है।) मंत्र यह है :—

"ओ३म् भूर्भूवः स्वः। तत्सवितुर्वरेण्यं भर्गो देवस्य धीमहि। धियो यो नः प्रचोदयात्।"

इसके पवित्र अर्थों को जानने से पूर्व आप एक दो बातों की ओर ध्यान दे ले। इस मंत्र को गायत्री, सावित्री गुरुमंत्र, वेदमुख व वेदमाता (इस मंत्र का नाम और इनका निरुपण) कहते हैं। गायत्री छंद का नाम है और यह मंत्र गाया जाता है।

गायत्री मंत्र २४ अक्षरों का होता है एवं इसके तीन पाद होते हैं तथा प्रत्येक पाद आठ अक्षरों का होता है।

यह मंत्र इस छंद में पढ़ा गया इसलिये इसका नाम गायत्री है। वेदों में और अनेक मंत्र गायत्री छंद में हैं। यह मंत्र अपनी निराली महिमा के कारण इतना प्रसिद्ध हो गया है कि गायत्री मंत्र कहने से यह ही समझा जाता है। गायत्री मंत्र 'तत्सवित्र' से प्रारम्भ होता है। ऋगवेद और सामवेद में यह मंत्र इतना ही है एवं यजुर्वेद में भी छत्तीसवें अध्याय के अतिरिक्त शेष सब स्थलों पर इतना ही आया है। यह भेद क्यों है? यथार्थ में गायत्री मंत्र तो इतना हीं है। भूः भुवः स्वः यह पहले तीन बड़े रहस्य के शब्द (गूढ़ अर्थ वाले) Great Mistrical Words हैं। 'शतपथ ब्राह्मण' में लिखा है "तीनों लोकों का सार तीन प्रकार के मंत्र हैं।"

त्रिविधि (तीन प्रकार के मंत्रों) मंत्रों का सार तीन महान गूढ़ अर्थ वाले शब्दों का सार 'ओ३म्' है। महान गूढ़ वाले शब्दों से पहले 'ओ३म्' शब्द है। स्मरण रहे कि किसी वेदमंत्र के आरम्भ में 'ओ३म्' शब्द नहीं है (पर ओ३म् शब्द है) पर 'ओ३म्' शब्द वेदमंत्र का एक माना हुआ भाग है, इसके बिना वेदमंत्र पूरा नहीं गिना जाता। भगवान मनु ने कहा है कि वेदपाठ के प्रारम्भ में 'ओ३म्' का उच्चारण न किया जाय तो वह पाठ बह जाता है :—

ब्राह्मणः प्रणवं कुर्यादादावन्ते च सर्वदा ।

स्त्रवत्यनोंकृतं पूर्वं पुरस्ताच्च विशीर्यति ।।

(मनु० द्वितीयो० श्लोक ७४)

यही भाव गोपथ ब्राह्मण का भी है :—

न मामनीरयित्वा ब्राह्मणः ब्रह्म वेदयुः ।

यदि वदेयुर ब्रह्म स्यात ।।

(गोपथ १—२—३)

छान्दोग्योपनिषद् में भी यही आशय है ।

तद्यथा शंकुना सर्वाणि पर्णानि संतृणानि ।

एवमों कारेण सर्वा वाक् संतृण्णा ।

ओंकार एवेदं सर्वं ।

ओंकार एवेदं सर्वम् ।।

(छान्दोग्यो० २—२३—३)

श्रीकृष्ण जी ने गीता में कहा :—

तस्मादो मित्युदाहृत्य यज्ञ दान तपः क्रियाः ।

प्रवर्तन्ते विधानोक्ताः सततं ब्रह्म वादिनाम् ।।

[अर्थः--इस हेतु ओम् इस पद का उच्चारण करके ब्रह्मवेता पुरुषों की विधि पूर्वक यज्ञ, दान, और तपस्या आदि सकल क्रियाएं होती हैं अर्थात ओङ्कार सहित ही ब्रह्मवादियों के सकल कर्म होते हैं ।]

जिस प्रकार पर्वत पर जल जोर से बरसता है और बह जाता है, पर्वत पर इस तरह बहुत थोड़ा प्रभाव होता है इसी तरह "ओ३म्" शब्द के उच्चारण बिना मंत्र का बहुत थोड़ा प्रभाव होता है । इस कारण 'ओ३म्' नाम वाले परमात्मा को हृदय में रख कर मंत्र का उच्चारण करना चाहिये ।

पहले लिख आए हैं कि गायत्री छंद २४ अक्षरों का होता है, पर इसमें २३ अक्षर हैं । तैत्तरीय ब्राह्मण १०।।४० में कहा है कि एक या दो अक्षरों की न्यूनता से छंद बदल नहीं जाते हैं । ऐसे छंद को जिसमें एक अक्षर कम हो (अर्थात ऐसे २३ अक्षरों के गायत्री छंद को) उसको निचृत गायत्री नाम दिया है । मात्रा को कमी को गाने में पूरा करने के लिये यह नियम है कि य – व के किसी दूसरे व्यञ्जन के साथ संयोग को य – व से पहले इ – उ बढ़ा कर अलग कर लेते हैं । इस नियम से वरेण्यं को वरेण्यम् पढ़ने से मात्रा पूरी हो जाती है ।

सावित्रीः—इसको सावित्री कहने का कारण यह है कि इसका देवता श्वेता है ।

गुरु मंत्रः —इसको गुरु मंत्र कहने का एक कारण यह है कि जब वाचार्य अपने शिष्य को वेद प्रारम्भ करते हैं तो सर्वप्रथम इस ही मंत्र से उपदेश करते हैं । इसमें परमगुरु परमात्मा की प्रेरणा पर चलने की शिक्षा दी है।

वेदमुख्य व वेदमाताः—वेद का पढ़ना और प्रत्येक दिन स्वाध्याय का आरम्भ भी इसी से होता है इसलिये वेदमुख्य कहा है एवं वेदमाता इस कारण कि वह सम्पूर्ण वेद के पठन का अधिकार दिला देता है इसके पश्चात् वेद आते हैं।

अर्थर्ववेद में एक मंत्र है इसको गायत्री मंत्र के जप के पश्चात् व स्वाध्याय के पश्चात् पाठ करते हैं:-

"स्तुता मया वरदा वेदमाता प्रचोदयन्तां पावमानो-द्विजानाम । आयुः, प्राणं प्रजां, पशुं, कीर्ति द्रविणं ब्रह्मवर्चसम् मह्यं दत्वा व्रजत ब्रह्मलोकम ।।"

(अथर्व० १६ । ७१ । १)

अर्थः—मैंने वेदमाता की स्तुति की है जो द्विजों को पवित्र करने वाली है। वह मेरे लिते दीर्घ आयु, तेक सन्तान, पशु, कीर्ति, धन और

धर्म के तेज को प्रेरे और यह सब कुछ प्रदान कर ब्रह्मलोक में प्रवेश कराये।

—: 'ओ३म्' की व्याख्या :—

'ओ३म्' शब्द की रचना का महत्वः—

'ओ३म्' परमात्मा का मुख्य नाम है । मुख्य नाम होने में इसके दो भेद हैं। प्रथम—शब्द की रचना, द्वितीय—अर्थ । परमात्मा व्यापक है, इनका मुख्य नाम वही होना चाहिये जो वाणीं की उत्पत्ति के सारे स्थानों में व्यापक होकर मुख से निकले।

वाणीं के उत्पत्ति के स्थान कंठ से लेकर ओठों तक हैं और 'ओ३म्' अ, उ और म इन तीन अक्षरों से बनता है । इसमें 'अ' कंठ में उच्चारण होता है। 'उ' सारे मुख को वायु से भरता हुआ उच्चरित होता है।

इस प्रकार वाणीं के सारे स्थानों को व्यापने वाला तिस पर भी छोटा सा और स्वर भर कर उच्चारण किया जाने वाला नाम है "ओ३म्" ही हो सकता है और कोई नहीं । यह विशेष गुण उसकी बनावट में है, दूसरा यह भी कि "ओ३म्' अव्यय है।

अव्यय उन संस्कृत शब्दों को कहते हैं जिसमें संस्कृत व्याकरण के नियम से कोई परिवर्तन नहीं होता, एक ही रुप में बने रहते हैं। परमात्मा में भी कोई परिवर्तन नहीं होता, सदा एक रस वर्तमान रहते हैं। इसलिये परमात्मा को भी अव्यय कहा है। सो इस सदृश्य से भी यह परमात्मा का मुख्य नाम होने के योग्य है।

अर्थ के विचार से भी इस नाम में बड़ी योग्यता है। थोड़े शब्दों में "ओ३म्" का अर्थ यह है:—

अ—का अर्थ वैश्वानर अर्थात इस स्थूल जगत का अधिष्ठाता व धारण करने वाला, प्रेरक व चलाने वाला और नियंता (नियम में रखने वाला।)

उ—का अर्थ प्राज्ञ अर्थात कारण रुप प्रकृति का अधिष्ठाता, प्रेरक और नियंता।

म—का अर्थ प्राज्ञ अर्थात कारण रुप प्रकृति का—अधिष्ठाता, प्रेरक और अन्तर्यामी नियंता।

इस प्रकार इस नाम से परमात्मा को—स्थूल—सूक्ष्म प्रकृति, जगत और उसका मूल कारण प्रकृति इन सब का परिचालक और वश में रखने वाला बतलाया गया है। जब आप ओ३म् का उच्चारण करो, आपका मन परमात्मा को इस प्रकार

अधिष्ठाता रुप से देखे।

व्याहृतियों का अर्थ:—'भूः'—सत्, 'भुवः—बनाने वाला चित्त (क्योंकि बनाने वाला सर्वेक्षक है।) 'स्वः'—सुख-आनन्द। सत्-चित्त-आनन्द यह अर्थ हुआ। यही अर्थ स्वामी शंकराचार्य ने किया है।

सारांश

"ओ३म्" :—सत्-चित्त-आनन्द

अर्थात स्थूल-सूक्ष्म जगत और मूल प्रकृति का अधिष्ठाता, सत्-चित्त-आनन्द स्वरुप।

यह परमात्मा का स्वरुप है जो गायत्री—आदि में गाया जाता है। इस प्रकार मंत्र का पूर्ण अर्थ यह निम्नलिखित हुआ :—

(ओ३म्) सत्-चित्त-आनन्द उस प्रेरक देव के (भूः) जो प्राण का भी प्राण (भुवः) सब दुखों से छुड़ाने वाला (स्वः) स्वयं सुख स्वरुप, उपासकों को सब सुख की प्राप्ति कराने वाला है, उस (सवितुः) सब जगत की उत्पत्ति करने वाले सूर्यादि प्रकाशकों के भी प्रकाश, समग्र ऐश्वर्य के दाता (देवस्य) कामना करने योग्य सर्वत्र विजय कराने वाले परमात्मा का जो (वरेण्यं) अति श्रेष्ठ ग्रहण और ध्यान करने योग्य (भर्गः) सब क्लेशों को भस्म करने वाला पवित्र शुद्ध—

स्वरुप है (तत्) उसको हम लोग (धीमहि) धारण करें। (यः) यह परमात्मा (नः) हमारी (धियः) बुद्धियों को उत्तम गुण, कर्म, स्वभावों में (प्रचोदयात्) प्रेरणा करे।

व्याख्यान—

इस मंत्र में परमात्मा को श्वेता अर्थात प्रेरक के नाम से सुमिरन किया है और उनसे यह प्रार्थना की है कि वह हमारी बुद्धियों के प्रेरक हों। यह विश्व उनकी प्रेरणा में चल रहा है, उनकी आज्ञा का कोई उलंघन नहीं कर सकता। प्रभु का ठीक इसी अनुसार आज्ञाकारी बनने का यह मंत्र हमें शिक्षा देता है, हमें ईश्वर-परायण होना सिखलाता है अर्थात हम अपना सारा विश्वास ईश्वर पर छोड़ दें कहें, हे भगवन् ! तुम जो कुछ चाहते हो हमसे कराओ। ऐसी पूरी सच्ची भावना से गायत्री मंत्र जपो तो अति शीघ्र परमगुरु परमात्मा तुम्हे प्यार करेंगे और तुम्हारे प्रेरक बनकर श्रेय मार्ग (शुभ मार्ग) से ले चलेंगे। जिस परमात्मा ने तुम्हें जन्म दिया है, जिसने तुम्हारे लालन-पालन के लिये माता पिताओं को जगत में उत्पन्न किया है, जिसने निर्वाह के लिये अनन्त वस्तुएं उत्पन्न की हैं, उस जगत-प्रभु ने तुम्हें अकेला नहीं छोड़ा है। वह अन्तर्यामी रुप से तुम्हारे हृदय में आसीन है। तुम अपने आपको उनको सौंप दो, भक्ति भावना से आतुर होकर (भरपूर होकर) उनको पुकारो। इसलिये यह गुरुमंत्र कहलाता है कि मनुष्य की प्रेरणा को

समझने और उस पर व्यवहार करने का हमें आदेश देता है। इस लिये वेदारम्भ में आचार्यगण इसी प्रथम उपदेश करते हैं। इस लिये उपनयन के समय जब आचार्य अपने ब्रह्मचारी को पूछता है:—"तू किसका ब्रह्मचारी है?" इसके उत्तर में जब बालक कहता है "भवतः" (आपका) तक आचार्य कहता है :—

इन्द्रस्य ब्रह्मचार्य स्याग्निराचार्य स्तवाहमाचार्य स्तव ।

पा० का० २२ क० २०-२१

अर्थः—तू इन्द्र का ब्रह्मचारी है, अग्नि तेरा आचार्य है, मैं तेरा आचार्य हूं।

अर्थात सर्वप्रथम उसको परमात्मा (इन्द्र) का ब्रह्मचारी बनाया। परमात्मा में आचार्यत्व (गुरुभाव) स्वीकार करके पीछे अपने आचार्यत्व को स्वोकार करता है इसलिये कि परम-गुरु, मनुष्य का, परमात्मा है जो सदैव अन्तर्यामी रुप से उसके हृदय में उपस्थित है। उस गुरु से शिक्षा ग्रहण करना और उस पर चलना किस अनुसार होता है इसे सिखलाना इस दूसरे गुरु (आचार्य) का कार्य है। इन्द्र बल का अधिष्ठाता अग्नि प्रकाश का अधिष्ठाता होने से परमात्मा को कहा है इसलिये इस मंत्र को जपते समय पूरी भावना से ईश्वर-परायण हो जावो और सारा भरोसा उन पर छोड दो वह तुम्हारा आचार्य (गुरु) होगा और अपनी दोनों शक्तिबल और प्रकाश प्रदान करेगा ।

उसकी प्रेरणा को ग्रहण करो और उस पर चलो, यही ईश्वर-परायणता है। यही आत्मसमर्पण है।

तुम अपने आपको ईश्वर को समर्पण कर दो, बस इतना ही तुम्हारा कार्य है फिर वह स्वयं ही तुम्हें सम्भाल लेगा। बिल्ली का बच्चा केवल इतना ही जानता है कि किस प्रकार म्याऊं म्याऊं करके अपनी माता को—पुकारना है। उसकी पुकार सुनकर बिल्ली अपने आप दौड़ आती है फिर आगे क्या करना है, यह सब वही जानती और वही करती है। कभी दूध पिलाती कभी एक स्थान से दूसरे स्थान ले जाती है। ठीक ऐसे ही—परमदयालु परमात्मा-माता को पुकारना सीखो आगे तुम्हारा योग क्षेम् वह आप उठा लेंगे (तुम्हारी चेष्टाओं और इनके लाभ के वह स्वयं स्वामी हो जाएंगे।)

गीता में लिखा है "जो इस तरह मेरे परायण होते हैं उन का योग क्षेम् मैं उठाता हूं।

(श्रीकृष्ण भगवान)

इस परम तात्पर्य को अनुभव करते हुए गायत्री मंत्र को जपो बहुत शीघ्र इसका फल अनुभव करोगे, तुम्हारे हृदय में प्रकाश बढ़ जावेगा और पाप की सारी कामनाएं मिटती जायेंगी।

गायत्री जप के विषय में भगवान मनु यह निश्चय बतलाते हैं :—

सहस्त्र कृत्वस्त्वभ्यस्य बहिरेतात्त्रिकं द्विजः।
महतो प्येनसो मासात्वचेवार्हिविभुमुच्यते ॥

(मनु० द्वितीयो० ७६)

अर्थः—जो द्विज एकान्त में इन तीनों ओ३म् व्याहृति, त्रिपादयुक्त गायत्री को सहस्त्र बार प्रतिदिन जपे तो एक मास जप करने से महापाप से भी छूट जाता है जैसे सर्प कन्चुलि से।

और फिर इसके आगे यह कहते है :—

ओङ्कार पूर्विकास्तिस्त्रो महाव्याहृतयोऽव्ययाः।
त्रिपदा चैव सावित्री विज्ञेयं ब्रह्मणोमुखम् ॥

(मनु० द्वितीयो० ८१)

अर्थः—ओङ्कार से युक्त तीन अविनाशिनी महाव्याहृतियों और त्रिपदा गायत्री को ब्रह्म का मुख जानना चाहिये अर्थात परमात्मा का द्वार।

योऽधीतेऽहन्यहन्येतांस्त्रीणि वर्षाण्यतान्द्रितः।
त्रिपदा चैव सावित्री विज्ञेयं ब्रह्मणोमुखम ॥

(मनु० द्वितीयो० ८२)

अर्थः-जो आलस्य रहित होकर प्रतिदिन तीन वर्ष पर्यन्त "ओं व्याहृति" और गायत्री का जप करता है वह परमब्रह्म को प्राप्त होता है।

कथा:-

इस परम-पवित्र गायत्री जप के विषय में बहुत सी प्राचीन और नवीन समय की कथाएं हैं। स्थान की कमी और अधिक विस्तार के भय के कारण अधिक न लिखकर केवल सम्राट अकबर के समय की एक कथा यहां पर वर्णित है। सम्राट अकबर तथा बीरबल दोनों एक दिन बाजार में जारहे थे। रास्ते में अकबर ने देखा कि एक ब्राह्मण दुकान पर भिक्षा मांगता घूमता है। एक दुकानदार ने उसे कुछ न देकर झिड़क (डांट) दिया तो वह ब्राह्मण अगली दुकान पर जाकर भिक्षार्थ खड़ा हो गया। यह दृश्य देखकर अकबर ने बीरबल से कहा (कटाक्ष किया), देखिये बीरबल ! यह आपका पूज्यनीय ब्राह्मण है। बीरबल के हृदय पर इस कटाक्ष ने एक चोट सी लगाई। उसने हृदय में ठान लिया कि उसको पूज्य बना कर ही छोड़ूंगा। ऐसा विचार कर बीरबल ने उस समय कोई उत्तर नहीं दिया और अकबर के साथ कार्य पर चला गया। दूसरे दिन बीरबल ने उस ब्राह्मण को बुला कर पूछा—तुम क्यों मांगते हो ? ब्राह्मण ने कहा- निर्वाह हेतु। तुम्हारा कितने में निर्वाह होता है, उत्तर—आठ आने में। पचास पैसे (आठ आना) प्रतिदिन मुझसे ले जाया करो और यमुना के तीर पर जाकर दस बार गायत्री का पाठ मेरे लिये किया करो। ब्राह्मण ने ऐसा स्वीकार किया और प्रतिदिन ऐसा करने लगा।

कुछ दिवस पश्चात उसने विचार किया कि दस बार बीरबल के लिये जपता हूं तो दस बार अपने लिये भी जप लिया करुं। ऐसा करने से उसके मुख पर तेज आने लगा और उसके मुंह हृदय-विशालता की बातें-निकलने लगीं। बीरबल ताड़ गया, उसने कहा ब्राह्मण ! मुझसे सहस्त्र रुपये मासिक लो और १०० बार गायत्री का जाप करो। ब्राह्मण ने ऐसा किया और साथ ही अपने जप को भी बढ़ा दिया और बढ़ाता चला गया। अपने जप के ध्यान में (आनन्द में) उसे ध्यान आया कि बीरबल-गायत्री की सच्ची महिमा को जानता है और मेरे निर्वाह से बहुत बढ़ कर देता है और केवल १०० बार गायत्री जप करवाता है। क्या वह ईश्वर जो बीरबल को देता है मुझे नहीं देगा ?

"मास मजूरी देत है तो क्यों राखे भगवान"

आज उसने गायत्री के सच्चे अर्थ को पा लिया। उसने बीरबल से अपना भरोसा उठा लिया और भगवान पर भरोसा किया। अहा ! इस भरोसे और विश्वास से उसे नया आनन्द मिला और वह अपनी सुध-बुध भूल कर जप में लगा है। वह तो अपने आप को भूल गया है पर जिसने माता के गर्भ में उसकी सुधि ली थी वह फिर कैसे विस्मृत कर सकता है। एक भक्त-जन वहीं उसके लिये भोजन ले आए, उसे भोजन कराया और प्रणाम करके चला गया। अब लोगों में उसके अटल भक्ति की चर्चा फैली और उसके जीवन निर्वाह हेतु वहीं उसको भोजन आदि आने लगा। मास व्यतीत हुआ पर वह रुपये लेने हेतु बीरबल के पास नहीं गया। बीरबल ने एक सप्ताह

तक प्रतीक्षा की जब वह न आया तो स्वयं उसके पास गया और कहा-इस-
बार तुम अपना मासिक धन लेने नहीं आए ? उसने उत्तर दिया—जाइए,
अब मैं आपसे यह धन नहीं ले सकता, जो तुम्हें देता है वह मुझे भी दे
सकता है, मैं सीधे उससे मांग सकता हूं, आपके द्वारा लेने की आवश्यकता
नहीं। बीरबल समझ गया कि इसे अब ज्ञात हो गया है। बीरबल ने पुनः
कहा—इस बार का धन तुम ले लो फिर मत लेना । ब्राह्मण ने उत्तर
दिया—मैं धन कदापि नहीं ले सकता बल्कि यह धन, जो तुमने मुझे सीधा
मार्ग दिखलाया है उसके निमित्त आपका है। धीरे-धीरे अकबर के कानों
तक यह बात पहुंची। सम्राट अकबर ने दो थाल सुवर्णादि भराकर ब्राह्मण
देवता से मिलने के लिये तैयार हुआ। किसी ने पूर्व पहुंच कर ब्राह्मण को
सूचित किया कि सम्राट-अकबर स्वयं यहाँ पधार रहे हैं और वह जो कुछ
तुम्हें दें, ले लेना, अस्वीकार मत करना। सम्राट अकबर ने पहुंच कर जब
सुवर्णादि के थाल भेंट किये तो ब्राह्मण ने उसे ग्रहण करने से अस्वीकार कर
दिया और कहा—यह मिट्टी-पत्थर मेरे किसी प्रयोजन का नहीं है, ले
जावो।

अकबर आश्चर्य चकित हो गया, कहा कि इतना महान, त्यागी पुरुष
मैंने कभी नहीं देखा। बीरबल ने कहा—देखा न, यह वही ब्राह्मण है जो
दर-दर भटकता था।

गायत्री मंत्र की महिमा इतनी महान है। इसी तरह आप भी अपना
महान परिवर्तन देखेंगे। जब आप अपना भरोसा परमेश्वर पर छोड़ देंगे

भला यह कभी सम्भव है कि पिता-परमेश्वर आपको भुला दे वह अपने
क्तों की सदैव रक्षा करते हैं, इस अटल विश्वास को लेकर गायत्री का
ाप करो और उसके सच्चे भक्त बनों।

गायत्री मंत्र के गम्भीर अर्थ और आशय पर महर्षि श्री
स्वामी दयानन्द जी महाराज और अनेक ऋषियों, महर्षियों
और आचार्यों ने भी पहले ही बहुत प्रकाश डाला है। यहाँ
पर संक्षेप के विचार से एक ही अध्यात्म अर्थ के विचार प्रेषण
किये जाते हैं।

—: ओ३म् :—

अथ समर्पणम्

हे ईश्वर दयानिधे ! भवत्कृपयाऽनेन–
जपोपासनादि कर्मणा धर्मार्थकाममोक्षाणां
सद्यः सिद्धि भर्वेन्नः ॥

अर्थ: -हे परमेश्वर--दयानिधे ! आपकी कृपा से जप, उपासनादि, धर्म कार्य जो हम करते हैं, वह हम आपको अर्पण–करते हैं । हे प्रभो ! धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष इन चारों पदार्थों की सिद्धि हमको शीघ्र प्राप्त होवे, ऐसी कृपा हम पर करो ।

—: ओ३म् :—

नमस्कार मंत्र

ओ३म् नमः शम्भवाय च मयो भवाय च ।
नमः शंकराय च मयस्कराय च ।
नमः शिवाय च शिवतराय च ॥
(यजु० १६ । ४१)

अर्थ:—

हे सुखस्व प्रभो ! संसार के उत्तम सुखों को देने–वाले स्वामिन् ! आपको हमारा नमस्कार है ।

हे जगत के कल्याण करने वाले, सर्वसुःख प्रदाता–परम पावन प्रभो ! आपको हमारा नमस्कार है ।

हे आनन्दकंद दयासिन्धो, कल्याणमय जगदानन्द–दाता परमेश्वर ! आपको हमारा बारम्बार नमस्कार हो ।

नमस्कार मंत्र

संध्या की समाप्ति नमस्कार मंत्र से होती है। सम्पूर्ण संध्या करते हुए मनुष्य का हृदय ईश्वर की महत्ता और दयालुता से इतना प्रभावित हो जाता है कि अनायास ही उसका मस्तिष्क परमात्मा के चरणों में झुक जाता है और उसके मुख से धन्यवाद के शब्द निकलने लगते हैं। नमस्कार मंत्र यह है:-

नमः शम्भवाय च मयो भवाय च।
नमः शंकराय च मयस्कराय च।
नमः शिवाय च शिवतराय च ॥

(यजु० १६ । ४१ ॥)

इस मंत्र में दो शब्द मुख्य हैं 'शम' और 'मयस'। 'शम' का अर्थ शान्ति और 'मयस' का अर्थ आनन्द है। शान्ति और आनन्द मस्तिष्क की प्रवृत्तियों के विचार से भिन्न-भिन्न हैं पर इन दोनों का परस्पर सम्बन्ध है, एक दूसरे के आश्रित हैं। शान्ति वाला पुरुष आनन्दमय है। शान्ति के बिना आनन्द नहीं और जहाँ आनन्द है वहां शान्ति अवश्य होगी।

शान्ति को समझने के लिये अशान्ति को समझना चाहिए। स्वस्थता की अपेक्षा रोग की अधिक अनुभूति होती है। जब शरीर

के अङ्ग स्वस्थ हों आपको उनका पता नहीं चलता लेकिन शरीर के किसी अङ्ग में पीड़ा हो तो वही मन में अधिक खटकता है। जैसे नेत्रों में पीड़ा उठे तो लगता है कि शरीर में नेत्र के अतिरिक्त कोई अङ्ग है ही नहीं। ऐसे ही मन अशान्त होने पर उसकी अनुभूति अति शीघ्र होती है।

अशान्ति के क्या अर्थ हैं।

मन की भिन्न-भिन्न प्रवित्तियां जब अपना संतुलन खो देती हैं तो इसी को अशाँति कहते हैं। जब उनमें संतुलन या सामंञ्जस्य होता है तो शान्ति होती है। शान्ति का अर्थ है सामञ्जस्य। जैसे हारमोनियम से निकले सातों स्वर ऐसे हों कि कोई स्वर दूसरे से ऊंचा-नीचा न प्रतीत हो तो यही स्वरों का मेल संतुलन या सामञ्जस्य है। यदि कोई एक स्वर ऊंचा-नीचा हो जाय तो बेसुरापन लगता है। यही बेसुरापन अशान्ति है। काम, क्रोध, लोभ, मोह रुपी मानसिक विक्षोभ मन में बेसुरापन उत्पन्न कर देता है, यही दुख का हेतु है। जब अशान्ति न हो तो इसी का नाम आनन्द है:—परमात्मा में काम, क्रोध, लोभ, मोह आदि क्षोभ नहीं, अतः वह शम+भव अर्थात शाँत है। जब शांत हुआ तो स्वभावतः मयस+भव अर्थात मयोभव है।

यह हुआ ईश्वर का निज स्वरुप। जब भक्त ईश्वर का ध्यान करता है तो उसके क्षोभ दूर होकर उसमें शाँति और

मयस (आनन्द) का संचार होने लगता है। यह जीव का गुण नहीं, ईश्वर प्रदत्त है, यदि जीव का अपना गुण होता तो उपासना की आवश्यकता न होती। इसलिये 'शम' और 'मयस' का कर्त्ता हुआ ईश्वर। इसलिये उसको कहा—

शं+कर—शंकर। मय+स्कर=मयस्कर

अर्थात ईश्वर न केवल स्वयं ही शाँत और आनन्दस्वरुप है अपितु उपासक को भी शाँत और आनन्दमय बना देता है ! इसलिये उपासक उसको बारम्बार नमस्कार करता है और कहता है कि आप 'शिव' अर्थात कल्याणप्रद हैं, 'शिवतर' अर्थात अत्यंत कल्याण के दाता हैं, आपसे अधिक कोई नहीं।

तुमको परमपिता बारम्बार प्रणाम हो।

ओं शान्तिः ! शान्तिः !! शान्ति !!!

शुद्धिपत्रम्

पृष्ठ सं०	पंक्ति	क्या है	क्या होना चाहिये
६	२०	क्षधा	क्षुधा
६	२७	क्रो	को
७	५	जवंस्तिष्ठेत	जपंस्तिष्ठेत्
८	८	ब्गय	व्यय
८	१५	श्रीमानव	श्रीमानों
९	४	प्रम	प्रेम
९	७	विपरित	विपरीत
११	१२	'शतपथ वाह्मण'	'शतपथ ब्राह्मण'
१३	१०	हा	हो
१३	१३	ततीय	तृतीय
१४	३	क्रिएया	क्रियायें
१७	६	सवानों	साधनों
२०,२५,३२	१	ओ भुः	ओं भूः
२३	१६	जगत्तुपादक	जगदुत्पादक
२४	११	प्रवत्त	प्रवृत्त
२५	७	ओं भुः	ओं भूः
२६	२	युयोध्यस्म जुहुराण	युयोध्यस्मज्जुहुराण
२६	१६	ले ही	से ही
२९	२१	पश्चत्	पश्चात्
३०	१९	छमाय मानान	छमायमानानां
३५	१३	पूवर्म कल्पयन	पूर्वमकल्पयत्
३५	१४	चन्तरिक्ष	चान्तरिक्ष
३७	१४	ि ल	मिल
४१	११	आसीत इंद	आसीत इदं
४१	१५	प मात्मा	परमात्मा
४६	५	जाता जाता	जाता
४६	१२	आप्रुवन पूर्वमर्षंन	आप्रुवन पूर्वमर्षत्

४६	१३	धावतोऽचान	धावतोऽन्यानत्ये
४७	१६	तिरिक्ष	तिर्रश्च
५२	१२	रक्षिता शन्नि	रक्षिताऽशनि
५८	७	तस्थपुश्च	तस्थुषश्च
६०	३	अघर्षण	अधमर्षण
६०	१४	से से भरा	से भरा
६१	१४	ब्रह्मयत् परम्	ब्रह्म यत्परम्
६१	१५	पारनाचिकेत	पारं नाचिकेतं
६४	७	पापेविधय	पापेविधूय
६५	८	संशयः	संशयाः
७१	१८	नशा	दशा
७६	१५	वं संशयः	सर्वं संशयाः
७६	१६	दृष्टे	दृष्टे परावरे ॥
७९	५	व्याच्या	व्याख्या
८१	१०	श्रणुयाम	शृणुयाम
८२	२२	तुण्य	पुण्य
८४	१२	सूगन्धि	सुगन्धिं
८४	१३	मत्यो	मृत्यो
८५	७	(परिबेदनम्)	[पतिबेदनम्]
८८	१५	च यिे	चाहिये
८९	१९	प्रमाद्यन्त	प्रमाद्यन्त
९८	२	स्त्रवत्य	स्रवत्य
१०७	३	सहस्त्र	सहस्र
१०७	३	तात्लिकं	तत्त्रिकं
१०७	४	विंभूमुच्यते	विंमुच्यते
१०७	९	तिस्त्रो	तिस्रो
१०७	१४	वर्षाण्यतान्द्रितः	वर्षाण्यतन्द्रितः
११२	३	सिद्धि भवेंन्नः	सिद्धिर्भवेन्नः
११५	८	अशांति	अशान्ति

—: ओ३म् :—

संगठन सूक्त

ओ३म् । सं समिद्युवसे वृषन्नग्ने विश्वान्यर्य आ ।
इलस्पदे समिध्यसे स नो वसून्या भर ॥१॥

हे प्रभो ! तुम शक्तिशाली हो बनाते सृष्टि को।
वेद सब गाते तुम्हें हैं कीजिये धन वृष्टि को॥

ओ३म् । संगच्छध्वं सं वदध्वं सं वो मनांसि जानताम् ।
देवा भागं यथा पूर्वे सं जानाना उपासते ॥२॥

प्रेम से मिलकर चलो बोलो सभी ज्ञानी बनो।
पूर्वजों की भाँति तुम कर्तव्य के मानी बनो॥

ओ३म् । समानो मन्त्रः समितिः समानी समानं मनः सह चित्तमेषाम् । समानं मन्त्रमभिमन्त्रये वः समानेन वो हविषा जुहोमि ॥३॥

हों विचार समान सबके चित्त मन सब एक हों।
ज्ञान देता हूं बराबर भोग्य पा सब नेक हों॥

ओ३म् । समानी व आकूतिः समाना हृदयानि वः ।
समानमस्तु वो मनो यथा वः सु सहासति ॥४॥

हों सभी के दिल तथा संकल्प अविरोधी सदा।
मन भरे हों प्रेम से जिससे बढ़े सुख सम्पदा॥

द्यौः शान्तिरन्तरिक्ष ँ शान्तिः पृथिवी शान्तिरापः शान्तिरोषधयः शान्तिः । वनस्पतयः शान्तिर्विश्वे देवाः शान्तिर्ब्रह्म शान्तिः सर्वं ँ शान्तिः शान्तिरेव शान्तिः सा मा शान्तिरेधि ॥ ओ३म् शान्तिः ३ ॥